श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः श्रीमते रामानन्दाय नमः
श्री सर्वेश्वरी चारुशीलायै नमः श्री हनुमते नमः

अथ श्री हनुमत्संहिता

श्री सीताराम रहस्य प्रकाशिका टीका

टीकाकारः—

रसराजैकनिष्ठ अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री अग्रदेवाचार्य वंशावतंस
श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द
मकरन्द रसलम्पट श्री श्री १०८ श्रीस्वामी जानकीशरण
जी महाराज (मधुकर) श्री चारुशीला मन्दिर,
श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी-२२४१२३
फोन नं०—३२७५४, (०५२७८)

✻ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ✻ श्रीमते रामानन्दाय नमः ✻

✻ श्री सर्वेश्वरी चारुशीलायै नमः ✻ श्री हनुमते नमः ✻

अथ श्री हनुमत्संहिता

श्री सीताराम रहस्य प्रकाशिका टीका

टीकाकारः—

श्रीसीताराम रहस्य समुद्रपोतायमान श्री रसराजाम्बुज दिनमणि आचार्य प्रवर अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री अग्रदेवाचार्य वंशावतंस श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द मकरन्द रसलम्पट श्री श्री १०८ श्रीस्वामी जानकीशरण जी महाराज (मधुकर) श्री चारुशीला मन्दिर,

श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी-२२४१२३

फोन नं०— ३२७५४, (०५२७८)

सहयोगकर्ता-

डा० श्रीपुरुषोत्तम दूबे उर्फ श्री पुरुषोत्तम शरणजी

ग्राम-विष्णुपुरा, पो०-परमेश्वरपुर, जि० गोरखपुर, उ०प्र० (भारत)

संशोधकः—

श्रीअवधधाम वासी, दासानुदास- बासुदेव दास

श्री चारुशीला मन्दिर, श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी

(सम्वत २०५५, माघ शुक्ल ५, बसन्त पञ्चमी)

प्रथम संस्करण-१०००] सन् १९९८ ई० [मूल्यः- ३१) मात्र

भूमिका

लोक प्राणानिलप्राणं, सर्वसाधक साधकम् ।
प्रणमामि हनुमन्तं, साधुवाधक बाधकम् ।।

समस्त लोकों के प्राणभूत श्री वायुदेव के प्रियप्राण समान पुत्र, सर्वं साधकों के सिद्ध फल देने वाले, और श्रीराम भक्तों के बाधक जो खल उनके बाधक ऐसे श्री हनुमन्तलाल जू को मैं प्रणाम करता हूँ ।

प्रस्तुत "श्रीहनुमत्संहिता" प्राचीन सद्ग्रन्थ है । श्री रसराजैकनिष्ठ श्री सीतारामोपासकों का प्राणाधिक प्रिय है । श्री सीताराम जू के सभी रसों के रसिक श्री हनुमन्तलाल जू एवं ऋषिवर अगस्तजी का सम्बाद है। अध्याय १ से ५ तक सरयू किनारे अनेक बनों में अनेक रासों का वर्णन है तथा अध्याय ६ में अर्थ पञ्चक एवं पञ्चरसों का वर्णन है। श्री हनुमत्-संहिता के प्राचीनता का इति नहीं है । परन्तु श्री अयोध्यावासि सन्तों के बाणी द्वारा प्राचीनता है ।

रसराजैकनिष्ठ श्री दीनबन्धु श्री रामप्रसाद दासजी महाराज जिनके द्वारा विन्दी तिलक देश-विदेश में फैला है । सो अपने शिक्षा धर्म पत्री में भी "श्री हनुमत्संहिता" का नाम दिये हैं जो कि वि० सम्बत् १९८७ में प्रकाशित है—

हनुमत्संहिता चैव तथा शिव संहिता ।
अगस्त संहिता चैव ग्रन्थ इष्ट विशेषतः ।। ९६ ।।

श्री युगलानन्य शरणजी महाराज जो कि श्री लक्ष्मणकिला के संस्थापक हुए उन्होंने "युगल विनोद विलास" नामक ग्रन्थ श्रीहनुमत्संहिता का ही रूपान्तर किये जो कि दोहा चौपाई में राग सहित गान योग्य है । श्री युगलानन्य शरणजी महाराज द्वारा रचित इस्ककान्ती में कवित्त है—

भटकत भरम भवन में अटकत लटकत मन मति काची ।
फटकत तुष फोटक विद्या विनु अटपट वदत अवाची ।।
खटपट करत सरस सज्जन से विषय विजय शिर नाची ।
युगलानन्य सार सर्वोपरि रसिक सम्प्रदा सांची ।।
श्री सीता स्वामिनी सम्प्रदा विदित बेद विद जाने ।
महाशम्भु हनुमन्त रसिक शिरताज अगस्त बखाने ।।
तिनके पद प्रसाद से मुनिवर मन्त्र महारस छाने ।
युगलानन्य शरण कलि कायर वकत आन की ताने ।।

"अर्थ पञ्चक" श्री हनुमत्संहिता के अन्तर्गत से ही व्याख्याकार श्री पं० रामवल्लभा शरणी महाराज द्वारा व्याख्या कार करके श्रीमणिराम दासजी महाराज की छावनी के महन्त जी ने श्री बैष्णव समाज में अर्थ पञ्चक की जानकारी केलिये छपवाकर बाँटे हैं। अतः यह "श्रीहनुमत्संहिता" प्राचीन ग्रन्थ है ।

वायु के विना देव, दक्ष, गन्धर्व, नर यानी प्राणि मात्र की क्या स्थिति होती है । उसी तरह से वायु के प्राण समान प्रिय पुत्र श्री हनुमन्त लाल जू को उपासना, कृपा के बिना सभी साधना प्राण हीन समझना चाहिए । चाहे वह साधना महान् ऐश्वर्य एवं अष्ट सिद्ध नव निधियों को देने वाला क्यों न हो ? इस लिये सनातन श्री वैष्णव धर्म के संरक्षक रूप में चार सम्प्रदाय (श्री, ब्रह्म, रुद्र, सनकादि) सजग प्रहरी है । चारों सम्प्रदायानुरागी, सनातन धर्मावलम्बी सरस हृदय ने श्री हनुमन्त लाल जू को सहर्ष पूर्वक किसी न किसी रूप में मान एवं पूज्यकर अपनी मनोकामना की पूर्ति की है । वैदक के अनुसार शरीर स्वास्थ के लिये पञ्च प्राण (पांच वायु) की परमावश्यकता है । पञ्च प्राणों में विकृति आते ही शरीर अस्वस्थ हो जाता है । विकृति चरमोत्कृष्ट सीमा पर पहुँचते ही शरीर नाश हो जाता है ।

श्रीरामचरित मानस विश्व में श्रद्धा एवं विश्वास का पात्र है। श्रीरामचरित मानस में जिस आदर्श की सृष्टि की गई है। उस सृष्टि रूप शरीर में पञ्चप्राण रूप मुख्य पाँच पात्र हैं—

१-श्रीसीतारामजी, २-श्रीलक्ष्मणजी, ३-श्रोभरतजी, ४-श्रीसुग्रीवजी, ५-समस्त बानरगण, इन सभी पञ्चप्राण रूप पात्रों की प्राण रक्षक, संकट निवारक श्रीहनुमन्त लालजी ही हैं। श्री हनुमन्त लालजी का गुणानुवाद जन्म जन्मान्तर में त्रैलोक के गायक सम्पूर्ण नहीं गा सकते हैं।

१—श्रीसीतारामजी—ये दोनों तत्त्वत: एक हैं। लीला भूमि में दो है। अत: जब श्रीराम विरहाग्नि से संतप्त होकर श्री जानकी जी लङ्का में अशोक वृक्ष से अग्नि की याचना कर रही हैं। उसी समय श्री हनुमन्त लाल जू श्रीराम नामांकित मुद्रिका देकर तथा प्रभु का सन्देश सुना कर विरहाग्नि को शान्त कर दिये।

प्रभु सन्देश सुनत वैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहि तेही॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयउ तात मो कँह जल जाना॥

उसो तरह श्री जानकी जी के वियोगाग्नि से ब्याकुल श्री राम जी को जब हनुमान जी लङ्का से आकर सन्देश सुनाये तो प्रभु श्री हनुमानजी ऋणिया बन गये।

प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

२—श्रीलक्ष्मण—लङ्का में शक्ति लगने पर शीघ्रता पूर्वक संजीवनी लाकर प्राण की रक्षा किये। "लाये संजिवनि लखन जियाये।" पाताल में अहिरावन के द्वारा दोनों भाई को देवी पूजन कर बलि देने की तैयारी में ही श्रीहनुमान जी ने देवी सहित अहिरावन को प्रास्त कर दोनों भाई की रक्षा किये।

३—श्रीभरतजी—चौदह वर्षों की अवधि के समाप्ति पर श्रीराम विरह रूप समुद्र में डूबने वाले ही थे कि श्रीं हनुमन्त लाल जू जहाज रूप बनकर आ गये ।

राम विरह सागर मँह, भरत मगन मन होत ।
विप्र रूप धरि पवनसुत, आइ गयउ जनु पोत ॥

सुनत बचन बिसरे सब दूखा । तृषावन्त जिमि पाइ पियूषा ।।

४—श्रीसुग्रीवजी—बालि भय से भयातुर श्रीसुग्रीवजी को श्रीहनुमन्त जू ने श्रीरामजी से मिलाकर भय रहित एवं किष्किन्धा का राजा बना दिये । श्रीसुग्रीवजी का समस्त कार्य श्रीहनुमन्तलाल जू ने किया ।

५—समस्त बानर गणः—श्रीसीता खोज के समय जब-जब बानरों पर संकट आया तो श्री हनुमन्त लाल जू निवारण किये । श्री हनुमन्तलाल जू को छोड़कर सभी बानर भूख और प्यास से मरना ही चाहते थे कि श्री हनुमन्त लाल जू पहाड़ पर चढ़ कर चारो तरफ देखा तो एक बिबर दिखाई दिया, जिसमें जल खग निकलते प्रवेश करते दिखाई दिये । अँधेरे गुफा में श्री हनुमन्त लाल आगे चले और स्वयं प्रभा की आज्ञा से फल खाये एवं जल पीकर प्रसन्न हुए । समुद्र के किनारे मरणासन स्थिति में सभी बानरों की श्रींसीताजी की खोज, शुभ सन्देश लाकर सभी बानरों की रक्षा की है—

नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना । राखे सकल कपिन्ह के प्राना ।।

अत: श्रीसीतारामोपासना के प्राणों के प्राण श्रीहनुमन्तलालजी हैं ।

सनातन धर्मावलम्बी सज्जन गण जरा अन्तर्मुख होकर सोचें, क्या ऐसा कोई योग, यज्ञ, तप, ब्रत, ज्ञान, ध्यान एवं साधना है ? जिसका फल भारत ऐसे पवित्रतम भूमि में मानव शरीर प्राप्त हो जाय ऐसा कोई नहीं है, इसमें केवल एक मात्र भगवान् श्री सीताराम जू की अहैतुकी कृपा ही कारण है । ऐसे कृपा का अवहेलना करके उनके साथ अनादि, शाश्वत, सनातन सम्बन्ध (नाता) को भूलकर मायिक, नाशवान् से दृढ़ सम्बन्ध

(नाता) जोड़कर पशुवत व्यवहार कर रहे हैं। यह संसार पाप - पुण्य सत्यासत्य के कर्म व्यवहारों से छूटता नहीं है। शरीर छूटने के बाद मोक्ष हो जायेगा, भगवत् प्राप्ति हो जायेगी, यह कहना, सुनना अनर्गल प्रलाप सदृश्य है। सद्ग्रन्थ एवं भगवत् कृपा पात्रों के सत्संग से शरीर रहते हुए चारों फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) प्राप्त हो जाना ही कल्याणकारण है। म० १-२।

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहि अति अनुराग।
लहहि चारि फल अछत तन, साधु समाज प्रयाग॥

भगवान् तथा भगवत कृपा पात्रों का जन्म-कर्म सब दिव्य होता है। भगवत कृपा पात्रों के कृपा के आधार बनाकर भगवत् शरणागति के बिना जीव सचेत नहीं होता है। जब-तक सचेत नहीं होता। तब तक दैवों की माया लगती है। जीव संसार में भ्रमण करता है। जिस छण में भगवान् एवं भक्तों में सम्बन्धानुसार दृढ़ प्रति उत्पन्न हो जाय उसी क्षण से संसार दुःख (दैवों की माया) से छूट जायेगा।

भरत जनक मुनि जन सचिव, साधु सचेत विहाय।
लागि देव माया सबहिं, जथा योग जनु पाय॥ (आ०२-३०२)

* प्रतिपाद-विषय *

पञ्च रसाचार्य श्री हनुमन्त लाल जू महाराज की बाणी उनकी कृपा से रसानुगागियों को रसानुसार ही दृष्टिगोचर होता है। किसी भी सद्ग्रन्थों में चार बातों पर ध्यान एवं विचार किया जाता है—

१—विषय, २—सम्बन्ध, ३—प्रयोजन, ४—अधिकारी।

१-विषय—भगवान् श्रीसीताराम जू का नाम, रूप, लीला, धाम, ये चारो सच्चिदानन्द एवं प्रकृति से परे हैं। अर्थात् इन्द्रियों का विषय नही है। यह तो प्रेमियों, अनुरागियों के प्रेमाञ्जन से अंजित नेत्रों द्वारा देखा जाता है। नाम, रूप, लीला, धाम के प्रकाश से अनन्त ब्रह्माण्डों के सभी

नाम, रूप, लीला, धाम प्रकाशित है। उन सबों के प्रकाश श्रीसीताराम जू हीं हैं, जो हेय गुणों से रहित एवं कल्याण गुणों के खानि, सगुन-निर्गुन के प्रेरक, जड़-चेतन सबको रमाने वाले, उभयविभूति नायक, वात्सल्य, स्वामित्व, शौशील्य, सौलभ्य, दया, कृपा, करुणा माधुर्यादि अनन्त गुणों से युक्त हैं। अनन्त रसों के रस, अनन्त सूर्यों के सूर्य हैं।

२-सम्बन्ध—अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्त जीवों का अनन्त अनादि, शाश्वत, सनातन, सम्वन्ध श्री सीताराम जू से है। इस ग्रन्थ में प्रधानता भोग्य-भोक्ता (पत्नी-पति) का सम्बन्ध है। भगवान् कृपा कर जिसको अपने कृपादृष्टि रूप सद्गुरु, सन्त द्वारा जिस सम्बम्धानुसार अपनाते हैं उसके लिये वही आनन्द समुद्र में बुड़ाने वाला होता है।

३-प्रयोजन—प्रतिकूल कृपा रूपी समुद्र से निकाल कर अनुकूल कृपा रूपी समुद्र में बुड़ा देना है। परमात्मा सच्चिदानन्द हैं। प्रतिकूल कृपा असत्, जड़-दुःख ये ही संसार है।

४-अधिकारी—जिस प्राणी को अपनी अनुकूल कृपा डोरि में बाँध चुके हैं, और जीव उसे समझने की इच्छा करता है, इसके लिये सद्सम्प्रदायनिष्ठ सन्तों को गुरु रूप स्वीकार कर भगवत् शरणागति करने वाला ही इसका अधिकारी है। रसराजैकनिष्ठ ही (नारी भाव वाले) परम अधिकारी हैं। जैसा कि—

"नारीभाव समायुक्तास्तेषां दृश्यं भवेद् ध्रुवम्।"

(हं० सं० अ० २ श्लोक ४३)

* क्षमा याचना *

पाठकों से क्षमा याचना करता हूँ कि योग्य नहीं होने पर भी लिखने एवं प्रेस का कार्य करने का दुःसाहस किया। यह विद्वानों का कार्य है, परन्तु यह दासानुदास विद्यालय गया नहीं है, केवल गुरु कृपाश्रय से कुछ अक्षरों को समझने लायक हुआ। यह तो माता-पिता विहीन संसार में भटक रहा था कि कृपा, दया के उदार से धनी श्री रामानन्द सम्प्रदाय के श्री सीताराम रहस्य समुद्रपोतायमान दिनमणि आचार्य प्रवर अनन्त श्री विभूषित रसराजैकनिष्ठ श्री अग्रदेवाचार्य वंशावतंस दासभाव रसैकनिष्ठ श्री श्री १०८ श्री स्वामी रामनारायणदासजी महाराज, श्रीराम जानकी मन्दिर, अमरगोहिवन पो०-सेंवरी, जि०-रोहितास (विहार) ने अहैंतुकी कृपा का पञ्च-संस्कार करके युगल मन्त्र, श्री हनुमान जी के मन्त्र, मन्त्रद्वय, चरम-मन्त्र, बारम्बार समझा सिखाकर कुछ अक्षरों का भी ज्ञान प्रदान किये हैं। अपनी निर्हेतुकी कृपा द्वारा प्रेरितकर सन् १९७०ई० में श्री-अयोध्या धाम में श्री सद्गुरूदेव जू , श्री चारुशीला मन्दिर के कृपा वेलि की सघन छाया में रख कर सत्संग का शुभ-अवसर प्रदान किये हैं। अतः यह दासानुदास दोनों आचार्य वर्य के चरणों का ऋणी जन्म जन्मान्तर बना रहना चाहता हूँ।

अतः पाठक गणों से प्रार्थना है कि भूल को सुधार कर पढ़ेंगे, गलती के लिये क्षमा प्रदान करेंगे।

श्रीसीताराम रसिक सन्तों एवं भक्तों के
चरणाम्बुज रसलम्पटेक्षुक—

दासानुदास बासुदेव दास

श्री चारुशीला मन्दिर, जानकीघाट

श्रीअयोध्याजी।

✱ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ✱ श्रीमते रामानन्दाय नमः ✱

✱ श्री सर्वेश्वरी चारुशीलायै नमः ✱ श्री हनुमते नमः ✱

ध्यान मूलं गुरुर्मूर्ति, पूजामूलं गुरुपदम् ।
मन्त्र मूलं गुरुर्वाक्य, भक्तिमूलं गुरुकृपा ॥

"अथ श्रीहनुमत्संहिता" के टीकाकारः—
रसराजैकनिष्ठ अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री अग्रदेवाचार्य वंशावतंस
श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द
मकरन्द रसलम्पट श्री श्री १०८ श्रीस्वामी जानकीशरण
जी महाराज (मधुकर) श्री चारुशीला मन्दिर,
श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी-२२४१२३

श्री सीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥ श्रीमते भगवते रामानन्दाचार्याय नमः ॥ श्रीमती सर्वेश्वरी श्री चारुशीलायै नमः ॥ श्री सियराम रसिक हनुमते नमः ॥ श्री सद्गुरबे नमः ॥ श्री वैष्णव चरण कमलेभ्यो नमः ॥

अथ श्रीहनुमत्संहिता

श्री सीताराम रहस्य प्रकाशिका टीका

प्रथमोऽध्यायः

मू०—जयत्यंताद्भुत संगरप्रियो महावली वीरवली मुखाग्रीः ।
प्रचण्डमार्त्तंड सहस्त्रकांतिः श्री रामपादद्वय एकतानः ॥१॥

अन्वयः—प्रचण्डमार्त्तंड सहस्त्रकान्तिः वीरवली - मुखाग्रणीः महावली श्री रामपादद्वय एकतानः अनन्त अद्भुत प्रियः जयति ॥१॥

अर्थः—अतिशय प्रवल हजारों सूर्यों के समान कान्ति वाले बीर बलवानों में अग्रगण्य (प्रमुख) महाबलवान श्री युगल सरकार (श्री सीताराम जू) के युगल पद कमलों में अनन्य वृत्ति वाले अनन्त अद्भुत् संग्राम प्रिय महावली श्री हनुमान जी की जय हो ॥

शव्दकोषानुसार संगर शव्द का अर्थ १-प्रतिज्ञा, २-स्वीकृति, ३-सौदा, ४-युद्ध, ५-ज्ञान, ६-निगल जाना, ७-दुर्भाग्य (संकट), ८-विष, आठ होता है । अंजनि नन्दन श्री हनुमान जी को ये सभी अर्थों में अद्भुत प्रिय है । आगे देखें एवं विचार करें ।

१-अद्भुत प्रतिज्ञा—बा० सु० ४२-२६-दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य········ । कठिन कर्मों को सहज में करने वाले श्री राम जी का मैं दास हूं । विनय-पत्रिका-३०, जाके गति है हनुमान की । ताकी पैज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पषान की ॥१॥ अघटित-घटन, सुघट-विघटन, ऐसी विरुदावलि नहिं आन की । सुमिरत संकट-सोच-विमोचन, मूरति मोद निधान की ॥२॥ तापर सानुकूल गिरजा हर लखन राम अरु जानकी । तुलसी कपि की कृपा विलोकनि, खानि सकल कल्यान की ॥३॥

२-अद्भुत् स्वीकृति:—श्री अंजनिनन्दन की स्वीकृति अद्भुत् है क्योंकि इनकी अनन्यता एवं नि:स्वार्थ सेवा से श्रीरामजी ऋणिया हो गये । वि०१६४) प्रेम कनौड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई । तेरोरिनी को कह्यो कपि सों ऐमी मानहिं को सेवकाई ॥ ३ ॥ अर्थात् श्री हनुमान जी जिसको स्वीकार करते हैं । उसे श्री सीताराम जो स्वीकार करते हैं ।

३-अद्भुत् सौदा:—ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत जितने देवी देवता हैं, सो सब सौदा करके यानि अपना कर पुन: छोड़ देने वाले हैं । खरीदे हुए सौदा को सम्यक् रक्षा नहीं कर सकने से छोड़ देते हैं । एकमात्र श्री हनुमानजी ही ऐसे हैं जो कि सौदा करके सम्यक् प्रकार रक्षा करते हैं। चाहे भगवत सौदा हो या भागवत सौदा हो दोनों की रक्षा करते हैं । वा० सु० ४२-३६ के अनुसार हजारों रावण युद्ध करने आवें तो भी मेरा सामना नहीं कर सकते हैं ।

४-अद्भुत् संग्राम:—श्री अंजनिनन्दन जी के अद्भुत् युद्ध को देख कर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, लखन, देवी देवता तथा स्वयं शत्रु प्रवल रावण भीं सिहाता है । यानि सभी चकित होते हैं । (क० लं० काण्ड ४०-४१) हाथिन सो हाथी मारे, घोड़े-घोड़े सों संहारे, रथनि सो रथ विदरनि बलवान की । चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहे, हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की ॥ बार-बार सेवक सराहना करत राम, तुलसी सराहे रीति साहेब सुजान की । लाँबी लुम लसत लपेटि पटकत भट, देखो-देखो लखन! लरनि हनुमान की ॥४०॥ दवकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक, मगन मही में एक गगन उड़ात है । पकरि पछारे कर चरन उखारे एक, चोरि फारि डारे एक मोंजि मारे लात है । तुलसी लखत राम, राबन, विबुध, विधि, चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात है । बड़े - बड़े वानईत वीर बलवान बड़े, जातुधान जूथप निपाते वातजात है ॥४॥

५-अद्भुत् ज्ञान:—अपने इष्ट के मनोरथों को जान कर अपने स्वरूप को स्त्री-पुरुष, सूक्ष्म-स्थूल, विराट - महाशिव अष्ट सिद्धियों के प्रभाव से अनन्त रूप धारणकर लेना तथा इष्ट के लीला में संयोग-वियोग के कारण सम्पूर्ण सेवा को जान लेना यही तो अद्भुत् ज्ञान है ।

६-अद्भुत् भक्षण:—(निगल जाना) अहिरावण को समाप्त करना, भीम के अभिमान को निगल जाना, महाभारत के युद्ध अभिमान को निगल जाना, भीष्म, द्रोणाचार्य को भी आश्चर्यमय कर देना यानि महारथियों के अभिमान को निगल जाना यही अद्भुत् भक्षण है ।

हनुमान बाहुक-५-भारत में पारथ के रथकेतु कपिराज, गाज्यों सुनि कुरूराज दल हलवल भो । कह्यो द्रोण भीषम समीरसुत महाबीर, वीर-रस वारि-निधि जाको बल जल भो । बानर सुभाय बालकेलि भूमि भानु लगि, फलंग फलांगहु ते घाटि नभ तल भो । नाइ-नाइ माथ जोरि-जोरि हाथ जोधा जो हैं, हनुमान देखे जगजीवन को फल भो ॥५॥

७-अद्भुत् संकट (दुर्भाग्य):—कालनेमि के सन्त वेष का आदर करते हुए भी अद्भुत् गुरु दक्षिणा देना यानि परम कल्याण करना तथा लंकिनी को मुक्के से मारकर बुद्धि परिवर्तन करना । (मानस लं० ५८ सु० ४)

८-अद्भुत् विष:—महाशम्भु रूप में समुद्रोत्पन्न महाविष को पीकर नीलकण्ठ नाम धरा लेना यही अद्भुत् विष है, जो कि संसारिक वासना रूप विष को जलाकर महामाधुर्य सच्चिदानन्द परात्पर ब्रह्म स्वरूप के विषय विष को देकर अमर कर देते हैं ।

महाबली:—जो अपने को इष्ट कृपा दृष्टि के मूर्तिमान सद्गुरु (आचार्य) यानि गुरु परम्परा द्वारा अपने आपको (आतमस्वरूप को) अकारत्रयरूपी श्री वैष्णवाग्नि में हवन कर दिया है, वही महाबली है । मन्त्रार्थानुसार (इष्ट का भोग्य पदार्थ) अर्थ स्वरूप सकलविधि कैंकर्य निपुण श्री हनुमान जी ही हैं । गुरू रूप महाबलियों में वीरबली श्री हनुमान जी हैं । श्रीराम रहस्योपनिषद् के अनुसार सनकादिकों के भी गुरू हैं । "सनकादियोगिवर्य अन्ये च ऋषयस्तथा······ । सभी गुरुओं के आदि गुरू श्री हनुमान जी हैं । इसलिये ऋषिवर अगस्त जी ने महावली, वीरबली, मुखाग्रणी श्रेष्ठ सेनापति कहा है ।

मार्त्तण्ड सहस्रकान्ति:—हजारों वृष राशि के सूर्य से भी अधिक प्रवर प्रताप (कान्ति) वाले, तीनों लोक में इनके समान तेजशाली वीर कोई नहीं है । (क०-लं० ४५) कौन की हांक पर चौक चंडीस विधि, चंडकर थकित

फिर तुरंग हांके । कौन के तेज वलसीम भट भोम से, भीमता निरखि कर नयन ढांके ।। दास तुलसीस के विरुद वरनत विवुध, वीर विरुदैत वर वैरि धाँके ।। नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन, कहाँ हनुमान-से वीर बाँके ।। ४५ ।।

श्रीराम पादद्वय एक तानः—श्री सीताराम युगल सरकार के युगल पद कमलों के अनन्य उपासक श्रीहनुमानजी की जय हो ।।१।।

मू०—कुंभोद्भवायांबुधि शोषणाय विशुद्ध विज्ञान शुभप्रदाय ।
श्रीराम पादद्वय निश्चिताय महामुनींद्राय नमो नमस्ते ।। २ ।।

अन्वयः—कुम्भोद्भवाय विशुद्ध विज्ञान शुभप्रदाय श्रीरामपादद्वय निश्चिताय अम्बुधि शोषणाय महामुनींद्राय ते नमो नमः ।।२।।

अर्थ—घड़ा से है जन्म जिनका विशुद्ध विज्ञानरूपी परम कल्याण को देने वाले श्री युगल सरकार श्री सीताराम जू के युगल चरण कमलों में निश्चित बुद्धि वाले अथाह समुद्र को सुखाने वाले, महामुनियों में सर्वश्रेष्ठ उन श्री अगस्त जी महाराज के लिए नमस्कार हो, नमस्कार हो ।

कुंभोद्भवायः—श्री अंगिरा ऋषि के समाधि से उत्पन्न होने से परम पवित्र है एवं मैत्रा वरुण के (रज-वीज) तेज के सहित कुम्भ से उत्पन्न होने से अपवित्रता की सीमा है । अर्थात् विद्या और अविद्या, दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्तियों की सीमा है । महाऋषियों के नायक हैं अपने इष्ट श्री सीताराम जू के भजन प्रभाव से अथाह समुद्र को पी जाने वाले विन्ध पर्वत को जमीन पर सुला कर ब्रह्माण्ड के भीतर कल्याण करने वाले हैं । आदि गुरू श्री हनुमान जी से विशुद्ध विज्ञान प्राप्त किये हुए हैं ।

मू०—श्रुतं रामस्य माहात्म्यं तव क्रान्महाकपे ।
ऐश्वर्यं मतुलं तेजः प्रभावं परमात्मनः ।। ३ ।।

अन्वयः—महाकपे ! परमात्मनः रामस्य माहात्म्यं ऐश्वर्यं अतुलं तेजः प्रभावं तव वक्रान् श्रुतम् ।।३।।

अर्थः—हे महाकपि श्री हनुमान जी; परमात्मा श्रीराम जी का माहात्म्य और ऐश्वर्य अतुलित तेज प्रभाव को आपके श्री मुखारविन्द से (मैंने) सुन लिया ।।३।।

मू०–माधुर्यं गोपनीयञ्च यदलभ्यं सुरासुरैः ।
ब्रह्मा वेदविदां श्रेष्ठः कपिलोनारदस्तथा ।। ४ ।।
वैष्णवानां च प्रवरः श्री पंचानन सर्वदृक् ।
प्रह्लाद सनको व्यासस्तथा बैयासकिर्हरिः ।। ५ ।।
पराशरस्सुरः सर्वे देवर्षयस्तथात्वि मे ।
श्रीश्शर्वाणी च सावित्री शेष सिद्धामहर्षयः ।। ६ ।।
विभीषणाद्यश्च ये साध्या वैष्णवा वैष्णवी तथा ।
सर्वेषामप्यलभ्यं यत्माधुर्यं जानकी पतेः ।। ७ ।।
तत्सर्वं श्रोतमिच्छामि विस्तारेण तवाननात् ।
त्वं साक्षाच्चारुशीला च नित्यामध्ये प्रपूजिता ।। ८ ।।
इति श्रुतं मयासर्वं तेनत्वां प्रणमाम्यहं ।
यद्यस्ति ते कृपामह्यं गुह्यं तद्वदसांप्रतम् ।। ९ ।।

अन्वयः—अब यत सुरा सुरैः अलभ्यं च गोपनीयं माधुर्यं वेद विदां श्रेष्ठः ब्रह्मा कपिलो नारदः तथा वैष्णवानां प्रवरः सर्वदृक् श्रीपञ्चाननः प्रह्लादो शनको व्यासस्तथा हरिः वैयासकिः परासरः सर्वं देवर्षय सुराः तथा तु इमे श्रीः च वाणी, सावित्री शेष सिद्धाः महर्षयः च ये विभीषणादयः साध्या वैष्णवा, वैष्णवी तथा सर्वेषां जानकीपते माधुर्यं यत् अलभ्यं सर्वं विस्तारेण तवाननात् श्रोतुमिच्छामि च त्वं नित्यामध्ये प्रपूजिता साक्षात् चारुशीला (असि) मया सर्वं इति श्रूतं तेनाऽहं त्वां प्रणमामि यत् मह्यं साप्रतं ते कृपा अस्ति गुह्यं वद् ॥९॥

अर्थः—अब जो अलभ्य (अप्राप्त) और गोपनीय (छिपाने योग्य) माधुर्य है जो वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ श्री ब्रह्मा जी से लेकर कपिलदेव, नारद था और भी श्री वैंष्णव श्रेष्ठ सर्वं दृष्टि वाले दर्शी श्री पञ्चानन (शंकर जी) तथा प्रह्लाद शनक, ब्यास तथा भगवान श्री शुकदेव जी परासर आदि सभी देवता देवर्षि इसी प्रकार लक्ष्मी, वाणी (सरस्वती) सावित्री, शेष जी सिद्ध महर्षि लोग और विभीषण जी आदि साध्य गण वैष्णव जन, दास, वैष्णवी या, दासी गण जानकी पति श्रीराम जी का जो माधुर्य सभी को अलभ्य है । आपके श्री मुखारविन्द से सुनना चाहता

हूँ (क्योंकि) आप श्री सीताराम जी के नित्य पार्षदों के बीच में सभी सीता के सखियों से पूज्य साक्षात् श्री चारुशीला जी हैं। आत्मा को परमात्मा से मिलाने के लिये सीताराम जी के तीन शक्तियाँ हैं। १– संधिनी–गुरु परम्परा द्वारा ब्रह्म सम्बन्ध जोड़ने वाली २– संदीपनी–शरणागतों को भजन में आनन्द देने वाली चारुशीला जी हैं। ३– अह्लादिनी – स्वरूप सिद्ध होने पर भेंट कराने में सीता जी स्वयं हैं। यह सब मैंने पहले से सुन रखा है। इसलिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ। यदि इस समय आपकी कृपा मुझ पर हो तो सम्यक् प्रकार से कहिए ॥९॥

मू०–रसिकानां हृदाह्लाद कारिणीं पावनीं कथाम्।
कथयन्ति महात्मानः प्राप्नुवन्ति हरेः पदम् ॥ १० ॥

अन्वयः—रसिकानां हृदाह्लाद कारिणीं पावनीं कथाम् महात्मानः कथयन्ति हरेः पदं प्राप्नुवन्ति ॥१०॥

अर्थः—रासिकों के हृदय को आनन्द देने वाली, इस पवित्र कथा को महात्मा लोग व्याख्यान करते हैं, जिस व्याख्यान से भगवद् धाम को प्राप्त कर लेते हैं। (रा० उ०) गाई राम गुन गण बिमल। भवतर विनहि प्रयास ॥

श्री हनुमान उवाच–साधुपृष्टोसि ब्रह्मर्षेमनसैवेति निश्चितम्।
गुह्याद्गुह्यतरं दिव्य तव प्रीत्या वदाम्यहम् ॥११॥

अन्वयः—ब्रह्मर्षे साधुपृष्टोसि (मे) मनसा इति निश्चितं गुह्याद् गुह्यतरं दिव्यं तव प्रीत्या वदाम्यहम् ॥११॥

अर्थः—हे ब्रह्मर्षे श्री अगस्त जी आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया। मेरे मन में यह बात निश्चित है, गुह्य (गूढ़) से भी गुह्यतर यह दिव्य कथा आपके प्रेमाधीन होकर मैं कहूँगा ॥११॥

मू०–गोलोकं निर्णयं सर्वमैश्वर्यं च निवेदितम्।
अद्यते कथयिष्यामि प्रेमामृत महोत्सवम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—प्रेमामृत महोत्सवं च गोलोकं निर्णयं सर्वं ऐश्वर्यं (तव) निवेदितं अद्यते कथयिष्यामि ॥१२॥

अर्थः—यह प्रेमामृत का जो महानोत्सव है यह सब गोलोक का निर्णय ऐश्वर्य आपने कहा है। इसका उत्तर इस समय आप से कहूँगा ॥१२॥

मू०–पावनं सर्व साधूनां रसिकानां च जीवनम् ।
न देयं कस्यचिदे तत्प्राणात्प्रियतरं महत् ॥ १३ ॥

अन्वयः - रसिकानां जीवनं च सर्वसाधूनां पावनं एतत् प्राणात्महत् प्रियतरं कस्यचित न देयं ॥१३॥

अर्थः - जो रसिकों का तो जीवन प्राण है । सभी साधुओं को पवित्र करने वाला प्राणों से भी अतिसय प्रियतर इस चरित्र को किसी अनधिकारी को मत देना ॥१३॥

मू०–यच्छ्रुत्वा नियतं वासोगोलोके नात्र संशयः ।
अयोध्याधिपतिः श्रीमान् रामो राजीवलोचनः ॥ १४ ॥

अन्वयः—राजीवलोचनः श्रीमान् रामः अयोध्यापति यत् श्रुत्वा गोलोके वासः नियतं अत्र संशयः न ॥१४॥

अर्थः—कमल के समान नेत्र वाले श्रीमान् राम जी अयोध्या के राजा हैं । जिनका यह रहस्य (एकान्तिक स्थान) सुनकर बिशुद्ध बुद्धि (शरणागति के बाद प्राप्त बुद्धि) के निश्चय में निश्चित रूप से हृदय में वास हो जाता है । इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥१४॥

मू०–जानक्या सह संप्रीतः क्रीड़ारस विलंपटः ।
माधुर्य सुख संपन्नामुवाच जनकात्मजाम् ॥१५॥

अन्वयः - जानक्या सह संप्रीतः क्रीड़ारस विलंपटः माधुर्यं सुख सम्पन्नां जनकात्मजां उवाच ॥१५॥

अर्थः—श्री जानकी जी के साथ प्रेम में विभोर हुए रम् धातु के क्रीड़ा अर्थ में आशक्त चित्त (श्रीराम जी) माधुर्य सुख से सम्यक् प्रकार पूर्ण श्री जनकात्मजा जी से बोले ॥१५॥

मू०–गम्यतां सरयू तीरं मनोमेत्वरयत्यलं ।
इत्युक्त्वा तां करे धृत्या जगाम रघुनंदनः ॥ १६ ॥

अन्वयः—मे मनः अलमत्वरयति सरयूतीरं गम्यतां इत्युक्त्वा रघुनन्दनः तां करे धृत्वा जगाम् ॥१६॥

अर्थः—मेरा मन (रमने के लिए) अतिसय अकुला रहा है । (हे प्रिय) सरयू

किनारे चलो । इतना कहकर श्री रघुनाथ जी श्री जानकी जी का हाथ पकड़ कर चल पड़े ॥१६॥

मू०–महारास रसोल्लासी विलासी सर्वदेहिनां ।
ज्ञात्वा तयोर्मनोभावं सख्यश्च परमोत्सुकाः ॥ १७ ॥

अन्वयः—सख्यः सर्वदेहिनां विलासी महारास रसोल्लासी तयोर्मनोभावं ज्ञात्वा परमोत्सुकाः ॥१७॥

अर्थः–(वे सभी सखियाँ) प्राणी मात्र के हृदय में विलास करने वाले महारास के रस में अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक दोनों सरकारों के भाव को जानकर महाउत्सुक हो गयी अतः उन सखिनों का आगे वर्णन है ॥१७॥

मू०–सुकेशाः सुस्मिताश्चैव सुश्रोण्यः परमाद्भुताः ।
रूप यौवन शालिन्यः सर्वाभरणभूषिताः ॥ १८ ॥

अर्थः– वे सब सखियाँ सुन्दर केश वाली मन्द मुस्क्यान वाली और सुन्दर नितम्ब वाली परम अद्भुता है । वे रूप यौवन सम्पन्ना है तथा सभी प्रकार के भूषणों से भूषिता है ॥१८॥

मू०–सुजघना दृढोरस्काः काश्चिद्बिल्वफलस्तनाः ।
गान विद्या कलालाप कुशलाः प्रेमपूरिताः ॥ १९ ॥

अर्थः—सुन्दर जंघा वाली, मजबूत वक्ष स्थल वाली, कोइ विल्वफता के समान स्तन वाली, गान विद्या में पण्डिता सुन्दर कलोल मचाने में पण्डिता एवं प्रेम से भरी हुई महापण्डिता है ॥१९॥

मू०–विदग्धा विविधाकाराः कामविद्या विशारदाः ।
नाना वादित्र कुशला रामचित्तापहारिकाः ॥ २० ॥

अर्थः—विविध आकार के काम कला में कुशल, विविध प्रकार के बाजा बजाने में निपुण श्रीराम जी के चित्त को हरण करने में चतुर हैं ॥२०॥

मू०–यासां कला कलांशेन जातानार्यः श्रियादयः ।
सर्वा रामार्पितधियो जानकी परिचारिकाः ॥ २१ ॥

अर्थः—श्री सीता जी के सखियों के कला के अंश से अनन्त उमा, रमा, ब्राह्मणी स्त्रियां उत्पन्न होती हैं । ऐसी वे सब सखियां अपने चित्त को श्रीराम जी के लिए अर्पण की हुई श्री जानकी जी की सेवा करती हैं ॥२१॥

मू०—अनन्त कोट्यो वह्वयश्च वेष्टिता जनकात्मजम् ।
विलक्षणा लक्षणाढ्या: स्वादु चंपकगर्भका: ।। २२ ।।

मू०—परमानंद शालिन्यो नानेंगित सुपंडिता: ।
ता सां मध्ये विराजंतौ परम प्रीति वर्द्धनौ ।। २३ ।।

अर्थ:—ऐसी वे सब सखियां अनन्त करोड़ों से भी अधिक श्री जानकी जी को घेरी हुई हैं । बड़ी विलक्षण सर्वलक्षण सम्पन्ना चम्पकादि सभी फूलों के स्वाद वाली महाआनन्द समुद्रभूता, विविध प्रकार के चेष्टाओं में पण्डिता उन सब सखियों के बीच में विराजमान दोनों सरकार श्री सीताराम जी परम अनुराग को बढ़ा रहे हैं (२२ व २३)

मू०—सुकुमारौ कोमलांगो मार माधुर्यमोहनौ ।
कुंकुमांकित सर्वांगौ चन्दनेन सुर्चचितौ ।। २४ ।।

मू०—नाना कुसुममालाभि: सुरभी कृतदिग्मुखौ ।
परस्पर रसाभिज्ञौ मनोवाचामगोचरौ ।। २५ ।।

अर्थ:—दोनों सरकार (श्री सीताराम जू) सुन्दर सुकुमार कोमल अंगों वाले, काम को भी अपने माधुर्य से मोहित करने वाले सर्वांग में चन्दन कुंकुमादि लेपन किए हुये विविध प्रकार के सुगन्धित फूलों के माला को पहने हुए दिशाओं को सुगन्धित कर रहे हैं, आपस में दोनों सरकार रस मर्मज्ञ (प्रेमामृत में) पगे हुए मन वाणी से परे हैं । (२४ व २५)

मू०—कटाक्ष क्षेप सम्पन्नौ लीलयाद्भुत दर्शनौ ।
प्रेमामृत रसावेशौ कर ग्रहणविह्वलौ ।। २६ ।।

अर्थ:—दोनों सरकार अपने विशाल नेत्रों के कटाक्षों से अद्भुत लीला का दर्शन दे रहे हैं । प्रेम रूपी अमृत में आविष्ट चित्त हुए एक दूसरे का हाथ पकड़ करके आनन्द विभोर हो रहे हैं ।।२६।।

मू०—एवं नानाविधानेन गच्छन्तौ वन चारिणौ ।
पादाम्बुज सुगन्धेन भ्रमन्ति भ्रमराखिला: ।। २७ ।।

अर्थ:—इस तरह नाना प्रकार के विधानों से विलास वनों में विचर रहे हैं ।

उन दोनों सरकार के चरणों से जमीन में चिन्ह बन जाते हैं। उनकी सुगन्धियों के लिए भौंरों का झुण्ड जुट पड़ता है ॥२७॥

मू०—नख चन्द्राद्भुतं दृष्ट्वा चकोरापरिबभ्रमुः।
सौदामिनीघनं दृष्ट्वा चातकाः परिचक्रमुः॥ २८ ॥

अर्थः—चरणों में नख रूपी चन्द्र को देख करके चकोर चारों तरफ से घूमने लगते हैं। दोनों सरकार के श्याम गौर श्री विग्रह को देख करके चातक चारों तरफ चक्कर लगाने लगते हैं ॥२८॥

मू०—गमनं सुंदरं दृष्ट्वा बंचिता हंस कुंजराः।
नव्यलावण्यकं दृष्ट्वा मूर्च्छितौरति मन्मथौ॥ २९॥

अर्थः - दोनों सरकार के वन विचरण की सुन्दरता को देख करके हंस और हाथी ठगे रह जाते हैं, और दोनों सरकार की सुन्दर सुकुमार कोमलता को देख करके रति और कामदेव मुर्छित हो जाते हैं ॥२९॥

मू०—हास्यलास्य कटाक्षैश्च चाटुकारैर्मनोहरैः।
नाना गानैः सुमधुरैर्वाद्यैर्विविध निर्मलैः॥ ३०॥

अर्थः—दोनों सरकार के हास्य, अंग चेष्टा कटाक्ष देख करके चुटकुले शब्दों से सबके मन को हरते हुए, सखियों के नाना प्रकार के गान मधुरता बाजाओं की विविध निर्मलता से धीरे हुए ॥३०॥

मू०—वेष्टितावालिभिस्तौ तु गच्छंतौ वर दंपती।
परस्पर रसावेशौ प्राप्तौ तौवनमुत्तमम्॥ ३१॥

अर्थः—दोनों सरकार दम्पत्ति (पति–पत्नी) भाव पूर्वक रसाविष्ट होकर उस उत्तम वन के अन्दर विचर रहे हैं। विचरते हुये ॥३१॥

मू०—तत्रदिव्यासने दिव्यं कानने मणिवेष्ठिते।
विराजंतौ कलाभिज्ञौ दृष्ट्वासख्यः प्रमोदिताः॥ ३२॥

मू०—पूज्यंत्यः प्रयत्नेन गंधमाल्यैः सुसंस्कृतैः।
वरान्न पान भोगैश्चतर्पिताः प्रीतिसंयुताः॥ ३३॥

मू०—पक्वतांबूलकर्पूरं दत्वाताभ्यां प्रयत्नतः।
ननृतुर्मुखमालोक्य सर्वा रासरसोत्सुकाः॥ ३४॥

शब्दार्थः—दोनों सरकार वन में किसी विशेष स्थान के दिव्य मणिमय सिंहासन पर विराजमान हुए । सभी कलाओं के मर्मज्ञ अपने सब सखी समाज को आनन्दित किये । सब सखियाँ फूल, माला, सुगन्धित आदि पदार्थों से तथा श्रेष्ठ अन्न पानादि भोगों से अति अनुराग पूर्वक तृप्त करते हुए पूजा कर रही हैं, बड़े प्रयत्न पूर्वक पके हुए पान के पत्ते विविध प्रकार के पदार्थों को दिये हुए युगल सरकार को देती हैं और बहुत से सखियाँ मुखचन्द्र को देखते हुए नृत्य कर रही हैं । सभी सखियाँ रास के रस के उत्सुकता से नृत्य कर रही हैं ॥३२, ३३, ३४॥

मू०—भ्रमद्भ्रमरिकायुतं बनमनंतमत्यद्भुतम् ।
निवेश्य जनकात्मजा रुचिर कंधरांसेभुजम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—जनकात्मजा रुचिर कंधरांसे भुजमनिवेश्य अद्भुतम् भ्रमरिकायुतां वनं भ्रमत् ॥३५,।

अर्थः—श्री जानकी जी के अत्यन्त सुन्दर कन्धे पर अपने भुजा को डाल करके अति अद्भुत भ्रमरियों से युक्त वन में (श्रीराम जी) घूम रहे हैं ॥३५॥

मू०—नमामि रसभाजनं विजयभामिनि संयुतम् ।
विविक्त सरयूतटे रसिक मौलिमालं हरिम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—विविक्त सरयूतटे विजयभामिनि संयुतं रसभाजनं रसिक मौलि मालं हरिम् नमामि ॥३६॥

अर्थः—एकान्त सरयू जी के किनारे पर अपनी विजय भामिनियों के सहित रस के एकमात्र पात्र रसिक शिरोमणि भगवान् श्रीराम जी को (मैं) नमस्कार करता हूँ ॥३६॥

इति श्रीमद्हनुमत्संहितायां परम रहस्ये महारासोत्सवे
श्रीहनुमदगस्त संवादे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

श्री सीताराम रहस्य समुद्रपोतायमान् श्री रसराजाम्बुज दिन मणि आचार्य प्रवर अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्रीअग्रदेवाचार्य वंशावतंस श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द मकरन्द रस-लम्पट श्रीजानकी शरण जी महाराज (मधुकर) द्वारा श्री-'हनुमत्संहिता' श्री सीताराम रहस्य प्रकाशिका टीका
प्रथमा अध्याय ॥ १ ॥

❋ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❋

श्री अगस्त उवाच—

मू०—ततः किं कृतवान रामो जानकी प्रेमलंपटः ।
कथ्यतां रसिकश्रेष्ठ यन्मनः सुस्थिरं भवेत् ।। १ ।।

अन्वयः—रसिक श्रेष्ठ रामो जानकी प्रेम लम्पटः ततः किं कृतवान् कथ्यतां यन्मनः सुस्थिरं भवेत् ।।१।।

अर्थः—श्री अगस्त जी बोले कि हे रसिकों में श्रेष्ठ श्री हनुमान जी श्री जानकी जी के प्रेम में लम्पट हुए श्रीराम जी उसके बाद क्या किये, कहिये जिससे मेरा मन सुनकर सम्यक् स्थिर हो जाय ।।१।।

श्री हनुमानुवाच—

मू०—तौ तत्र दृष्ट्वा विपिनंमनोहरं वरं कदंबैः परिवेष्ठितं महत् ।
यन्मूल वेदी मणिमाल संयुता हेमैर्महार्हैपरितः प्रसन्ना ।।२।।

अन्वयः—महत् वरं कदम्बैः परिवेष्ठितं मनोहरं विपिनं यन्मूलवेदी महार्हैः हेमैः मणिमाल संयुता परितः प्रसन्ना तत्र तौ दृष्ट्वा ।।२।।

अर्थः—महान् श्रेष्ठ कदम्बों से चारों तरफ घिरा हुआ मनोहर वन को जिसके मध्य में बहुमूल्य स्वर्ण, मणियों के माला से चारों तरफ प्रकाशमान देख कर दोनों सरकार ।।२।।

मू०—प्रसन्नदीप्तौ परमासनस्थौ विराजमानौ च विभूषणांचितौ ।
परस्परावेश विलास संभ्रमौ शुचिस्मितौ नित्य वयः किशोरौ ।।३।।

अन्वयः—नित्यवयः किशोरौ विभूषणां चित्तौ परस्परावेश विलास संभ्रमौ परमासनस्थौ विराजमानौ प्रसन्नदीप्तौ शुचिस्मितौ ।।३।।

अर्थः—नित्य नवलकिशोर अवस्था वाले सुन्दर भूषणों से भूषित परस्पर आवेषित हुए विलास के उत्सुकता में प्रसन्न प्रकाशमान होकर पवित्र दिव्य सिंहासन में विराजे हुए मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं ।।३।।

मू०—नानासुगंधानि वनानि कानि प्रफुल्लितानीह समं समंतात् ।
द्विरेफमालाः शुभसंयुतानि पिबन्ति माध्वी करसानि सर्वतः ।।४।।

अन्वय:—इह नाना सुगन्धानि वनानि कानि समं समंतात् प्रफुल्लितानि सर्वत: माध्वीकरसानि पिबन्ति द्विरेफमाला: शुभ संयुतानि ।।४।।

अर्थ:—इस कदम्ब वन में नाना प्रकार के अत्यन्त सुगन्धित वनों में अर्थात् अनेक ऋतुओं के अलग-अलग वनों में चारों तरफ एक समान रूप से फूल फूले हुए हैं । जिनमें चारों तरफ मधु के रसों को पीते हुए अति सुन्दर भौरों के माला या झुण्ड शोभित हो रहे हैं ।।४।।

मू०-पतंति मत्तारजसारुणांगा नयंति केचित्कुसुमाकरेषु ।
क्वचिन्मयूरा: परिनृत्ययंति गायन्ति कीरा: क्वचिद् प्रमेया: ।।५।।

अन्वय:—रजसा रुणांगामत्ता पतंति केचित्कुसुमाकरेषु नयन्ति क्वचिन्मयूरा: परिनृत्यन्ति क्वचित् अप्रमेया: कीरा: गायन्ति ।।५।।

अर्थ:—फूलों के पराग से रंगे हुए शरीर वाले मतवाले मतवाले भौरे झुण्ड के झुण्ड गिर पड़ते हैं । कहीं पर भौरे फूलों के गुच्छों पर बैठ कर डालों को झुका देते हैं । कहीं पर मोर बड़ा ही सुन्दर नृत्य करते हैं । कहीं पर तोते अद्भुत वाणी से गीत गाते हैं ।।५।।

मू०-अन्ये द्विजा जांवुनदांगनस्था निरीक्षयंते रघुवंशनाथम् ।
ध्यानेक्षणा: सद्यनिमेषणाश्च चित्तार्पिताश्चिन्मनसो बभूवु: ।।६।।

अन्वय:—अन्ये द्विजा जांबुनदांगनस्थ रघुवंशनाथम् निरिक्षयन्ते ध्यानेक्षणा: च सद्यनिमेषणाश्च चित्तार्पितश्चिन्मनसो वभूवु: ।।६।।

अर्थ:—अन्य कोई बहुत से पक्षी सुवर्णमयी आंगन में ही, बैठे सूर्य वंश के नाथ (दोनों सरकार) को एक दूसरे को दिखा रहे हैं । (बहुत से पक्षी) ध्यान मग्न हो जाते हैं फिर शीघ्र आँखें खोल करके दोनों सरकारों को देखते हुए अपने चित्त को अर्पित कर देते हैं । इस प्रकार चिन्मय चित्त वाले हो जाते हैं ।।६।।

मू०-तत: प्रतीक्ष्य श्रीराम: सीतया सह शोभनम् ।
काननं वकुलैर्जुष्टं परमानन्द दायकम् ।। ७ ।।

अन्वय:— तत: सीतया सह श्रीराम: परमानन्द दायकम् वकुलैर्जुष्टं काननं शोभनं प्रतीक्ष्य ।।७।।

अर्थः—उसके बाद श्री किशोरी जी के सहित श्रीराम जी परम आनन्द देने वाले मौलसिरी आदि वृक्षों से युक्त अतिशय सुन्दर वन को देख करके ।।७।।

मू०—यत्रवृक्षालताढ्याश्च पारिजातहरश्रियः ।
सर्वेकिशोराः कैशोर्यः बरपल्लव लंविताः ।। ८ ।।

अन्वयः— यत्र लताढ्याः च वृक्षाः कैशोर्यः वर पल्लव लम्बिताः सर्वे किशोराः पारिजात हरश्रियः ।।८।।

अर्थः—जहाँ पर लताओं से संयुक्त वृक्ष श्रेष्ठ लटकी हुई लताओं वाले सब किशोर किशोरी अवस्था वाले हैं । जो अपनी शोभा से कल्पवृक्ष की शोभा को हरण कर रहे हैं ।।८।।

मू०—प्रसूनवरभारेण नम्रशाखामही गताः ।
तद्गंधवायुनाशश्वत् पूरिता दशदिग्भुवः ।। ९ ।।

अर्थः—फूलों के बोझ से नम्र हुई शाखा जमीन की तरफ झुक गयी, उन शाखाओं के फूलों के सुगन्ध से एक रस दशदिशा सम्पूर्ण पृथ्वी सम्यक् प्रकार से भर गयी है ।।९।।

मू०—भ्रमन्ति भ्रमरः सर्वे मधुपानाखिलाशयाः ।
धावंतश्च पिबंतश्च पतंतश्च मुहुर्मुहुः ।। १० ।।

अन्वयः—मधुपानाखिलाशयाः सर्वे भ्रमराः धावंतश्च पिबंतश्च पतंतश्च मुहुर्मुहुः भ्रमन्ति ।।१०।।

अर्थः—फूलों के पराग पाने की चाहना से भ्रमरों के झुण्ड इधर उधर दौड़ते हैं, फूलों के मधु को पीते हैं, और मधुपान से उन्मत्त होना बार-बार झुण्ड के झुण्ड गिरते हैं ।।१०।।

मू०—तत्राद्भुतफलंरम्यं खादयंतः सुधासमम् ।
खगाः संतुष्ट मनसो नृत्यवंतः सुखोचिताः ।। ११ ।।

अन्वयः—तत्र सुधासमं रम्यं अद्भुतफलं खादयन्तः सुखोचित्ता खगाः सन्तुष्ट मनसो नृत्यबन्तः ।।११।।

अर्थः—उस वन में (सुधासम) अमृत के समान दिव्य रमणीय फलों को खाते हुए, युगल सरकार के रुचि के अनुकूल सुखोचित पंक्षी सन्तुंष्ट मन हो करके नृत्य कर रहे हैं ।।११।।

मू०—यत्र भूः कांचनोदिव्या खचिता मणिमालकैः ।
नानावेदी दीप्यमाना मणिकुट्टिमशालिनी ॥ १२ ॥

अन्वयः—यत्र नानामणि कुट्टिमशालिनी नानावेदी दीप्यमाना मणिमालकैः खचिता दिव्य काँचनी भूः ॥१२॥

अर्थः—जहाँ पर अनेक मणि के चूर्ण से सजी हुई अनेक वेदियों से प्रकाशमान मणिमालाओं से खचिता दिव्य सुवर्णमयी पृथ्वी है ॥१२॥

मू०—मयूरकीर कलनैर्मंडिता मधुरस्वरैः ।
सखीनां गनगांभीर्य सौंदर्य परिपूरिका ॥ १३ ॥

अन्वयः— मधुरस्वरैः मयूरवीर कलनैर्मंडिता भूः सखीनां गनगम्भीर्यं सौन्दर्य परिपूरिका भूः ॥१३॥

अर्थः—मधुर स्वर से मोर शुक आदि के कल्लोल से भूषित पृथ्वी सखियों के झुण्डों की गम्भीर सौन्दर्य से परिपूर्ण पृथ्वी ॥१३॥

मू०—सुखास्तरणविस्तीर्णा पर्यंकैरूपशोभिता ।
तत्र रामो महाबाहू रमते रमतांवरः ॥ १४ ॥

अन्वयः—सुखास्तरण विस्तीर्णं पर्यंकैरूप शोभिता तत्र भूः रमतां वर महावाहु रामः रमते ॥१४॥

अर्थः—सुखमय बिछावनों से युक्त विस्तृत पलंगों से शोभित पृथ्वी है, वहाँ पर रमण करने वालों में श्रेष्ठ अजानवाहु श्रीराम जी रमण करते हैं ॥१४॥

मू०-ततः प्राप्तोवनं दिव्यं माधवीमंजु मण्डितम् ।
नानामणि गणाकीर्णं विस्तृतं परमासनैः ॥ १५ ॥

अन्वयः—ततः नानामणि गणाकीर्णं परमासनैः विस्तृतं मंजुमण्डितं दिव्यं माधवी वनं प्राप्तः ॥१५॥

अर्थः—उसके बाद श्रीराम जी अनेक मणियों से खचित महान् आसनों से बिस्तार वाला बड़ा सुन्दर भूषित दिव्य माधवी बन को पहुँचे ॥१५॥

मू०—मत्तालिमाल संघुष्टं कुंज पुन्जैः सुवेष्टितं ।
महाल्लाद करं कान्तं कान्ताचित्तापहारकम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—मत्तालिमालसंघुष्टं कुञ्जपुञ्जैः सुवेष्टितं कान्ता चित्तापहारकम् महाह्लाद करं कान्तम् ॥१६॥

अर्थः—मत्तवाले भौरों के गुञ्जारों से गुञ्जित कुञ्ज समूह से सुन्दर घिरा हुआ कान्ताओं के चित्त का अपहरण करने वाला, महाआनन्द वर्धक प्रकाश वाला ॥१६॥

मू०-पक्षि संघैश्च निनदैर्नादितं परमाद्भुतम् ।
मदनोन्मादन करं श्रीमदूर्जित सुप्रभम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—परमाद्भुतं पक्षि संघैश्च निनदैंनादितं मदनोन्मादन करं श्रीमद् उर्जित सुप्रभम् ॥१७॥

अर्थः—परम अद्भुत पंक्षी समूहों के अनेक प्रकार के नादों से निनादित (गुञ्जित) मदन (कामदेव) के उन्माद को बढ़ाने वाले शोभा में अत्यन्त चढ़ा-बढ़ा सुन्दर प्रकाश वाला (माधवी वन) हैं ॥१७॥

मू०-परस्परं भाषयंतौ केलि कौतूहलान्वितौ ।
तत्र प्रेमरसावेशौ विहरंतौ सुदम्पती ॥ १८ ॥

अन्वयः—तत्र परस्परं भाषयन्तौ प्रेमरसावेषौ सुदम्पती केलिकौतुहलान्वितौ विहरन्तौ ॥१८॥

अर्थः—उस माधवी वन में आपस में वार्तालाप करते हुए केलि के कौतुहलों में रंगे हुए दोनों सुन्दर दम्पती श्री सीताराम जी प्रेम रसाविष्ट होकर बिहार कर रहे हैं ॥१८॥

मू०-महद्वनं समायेतौ सर्वाभरणभूषितौ ।
कर्पूर पक्वतांबूल चर्वणादिभिरावृतौ ॥ १६ ॥

अन्वयः—सर्वाभरणभूषितौ कर्पूरपक्वताम्बूल चर्वणादि भिरावृत्तौ महद्वनं समायेतौ ॥१६॥

अर्थः—सब प्रकार के भूषणों से भूषित अंग वाले कर्पूर आदि मसालों से पूर्ण पके पान के बीरे को चबाने वाले समाज से घिरे हुए विशाल वन में प्रवेश किये ॥१६॥

मू०-कटाक्ष क्षेपनाशक्तौ हास्यलावण्यलालितौ ।
कंदर्प्प दीप्ति दर्प्पघ्नौ महामाधुर्यं मण्डितौ ॥ २० ॥

अन्वय:—हास्यलावण्य लालितौ कटाक्ष क्षेपनशक्तौ कंदर्प्प दीप्ति दर्प्पघ्नौ महामाधुयै मण्डितौ ॥२०॥

अर्थः—हास्य विलास से लालित हुए अनेक प्रकार के कटाक्षों से आसक्त कामदेव के भी प्रकाश के अभिमान को नाश करते हुए दोनों सरकार महामाधुर्य से भूषित हो रहे हैं ॥२०॥

मू०-बाणीवाचा गम्यरूपौ रतिशास्त्र विशारदौ ।
तडिद्‌घन समाकारौ लोक लोचन लोभिनौ ॥ २१ ॥

अन्वय:—तडितघन समाकारौ लोक लोचन लोभिनौ रति शास्त्रविशारदौ बाणी वाचाऽगम्य रूपौ ॥२१॥

अर्थः—विजली और मेघ के समान दोनों सरकार सभी अपने लोक आश्रित लोचनों को लोभित करने वाले रतिशास्त्र में ऐसे महापण्डित हैं जो मन, बाणी से अगम्य रूप हैं ॥२१॥

मू०-तत्र नानाबिधाक्रीड़ा क्रीड़मानौ सुनर्मभिः ।
ततः प्रविश्य श्रीरामः परमानन्द दायकम् ॥ २२ ॥

अन्वय:—तत्र सुनर्मभिः नानाबिधा क्रीडा क्रीडमानौ तत्र श्रीरामः परमानन्द दायकम् (वृन्दावनं) प्रविश्य ॥२२॥

अर्थः—उस उपरोक्त स्थान में बड़ी मधुरता युक्त नानाविधि के विलासों से देखते हुए, उसके बाद श्रीराम जी परमानन्द दायक वृन्दावन नामक **बन** में प्रवेश किये ॥२२॥

मू०-बनं वृन्दावनं नाम सर्वध्यानमयं परम् ।
तत्र वृन्दासखी साक्षात्सेवतेऽनिशमुत्तमम् ॥ २३ ॥

अन्वय:—सर्वध्यानमयं परं (वनं) तत्र साक्षात्वृन्दा सखी अनिशं उत्तमं सेवते ॥२३॥

अर्थः—सभी ध्यानियों के ध्यान से परे उस वृन्दावन नामक वन में साक्षात्वृन्दा सखी जी दिन-रात उत्तम प्रकार से सेवा करती हैं ॥२३॥

मू०-बज्रबैदूर्यमाणिक्य मण्डिता भूः सुविस्तृता ।
नाना कुञ्ज कलापैश्च वेष्टिता हेमवल्लिभिः ।। २४ ।।

अन्वयः—(तत्र) भूः वज्र वैदूर्यमाणिक्य मण्डिता सुविस्तृता नाना कुञ्ज कलापैश्च हेमवल्लिभिः वेष्टिता ।।२४।।

अर्थः—वह वृन्दावन की भूमि हीरा, वैदूर्य आदि माणिक्यों से भूषित विस्तार वाली है, जहाँ पर बिविध प्रकार के सुन्दर कुञ्जों में पक्षी भ्रमरादिकों के कल्लोल से तथा सुवर्णमयी लताओं से घिरी हुई हैं ।।२४।।

मू०-बहन्तित्रिविधावाता रंजिता पुष्परेणुभिः ।
प्रभयाभासमाना सा मनोवाचामगोचरा ।। २५ ।।

अन्वयः—त्रिविधावाता बहन्ति पुष्परेणुभिः रंजिता सा प्रभयाभास माना मनोवाचामगोचरा ।।२५।।

अर्थः—जहाँ पर मन्द, सुगन्ध, शीतल वायु बह रही है, फूलों की पराग के रंगों से भूमि रंग रही है । अपने प्रकाश से स्वयं प्रकाशमान हो, रही है अतः मन वाणि के बिषय से परे हैं ।।२५।।

मू०-गुञ्जनमधुव्रतश्रेणी नानाद्विजसमाकुला ।
रमते तत्र बैदेह्या सहरामो रसात्मकः ।। २६ ।।

अन्वयः—मधुव्रत श्रेणी गुञ्जमाना नानाबिधि समाकुला रसात्मकः रामः तत्र बैदेह्या सह रमते ।।२६।।

अर्थः—जहाँ भौरों के झुण्डों का गुञ्जार मचा है । अनेक प्रकार के पंक्षियों से वन भरा है । रसमय भाव वाले रसः स्वरूप श्रीराम जी उस भूमि पर बैदेही जी के संग रमण कर रहे हैं ।।२६।।

मू०-विलासनिपुणा सख्यस्ताभिः सहविलासकृत् ।
विचित्रां वरभूषाभिर्भासमानाभिरावृता ।। २७ ।।

अन्वयः—विचित्रां वरभूषाभिर्भासमानाभिः विलास निपुणा सख्यः आवृता ताभिः सह विलास कृता ।।२७।।

अर्थः—विचित्र श्रेष्ठ भूषणों से भूषित एवं बिलास में प्रवीण सखियाँ घेरे हुई हैं, उस सखियों के साथ-साथ भी विलास कर रहे हैं ।।२७।।

मू०-ततो मंदारकं नाम वनं सर्ववनाद्वरं ।
सुखदं शुभदं साक्षाद्ब्रह्म ज्योतिर्मयं परम् ।। २८ ।।

अन्वयः—ततः सुखदं शुभदं साक्षात्ब्रह्म ज्योतिर्मयपरं सर्वं वनादिवरं मन्दारकं नामवनम् ।।२८।।

अर्थः—इसके वाद महासुखदाई शुभदाई साक्षात्ब्रह्म ज्योतिर्मय मण्डल से परे सभी वनों में सर्वश्रेष्ठ मन्दार नामक महावन है ।।२८।।

मू०-द्विजालिकुलकलितं कामिनां कामदं परम् ।
सर्वपुष्प फलोपेतं मधुभारैर्विलंवितम् ।। २९ ।।

अन्वयः—द्विजालि कुलकलितं सर्वपुष्पफलोपेतं मधुभारैर्विलंवितं कामिनां परं कामदम् ।।२९।।

अर्थः—पक्षी भौंरादिकों से गुञ्जित सभी प्रकार के फूलों और फलों से परिपूर्ण भौरों के मधुभार से लटके हुए, कामियों के परम काम देने वाले हैं ।।२९।।

मू०-बेदी मण्डप संवाधं मणिस्तम्भैर्विभूषितम् ।
पद्मरागस्य पद्माभस्सोपानैरुपशोभितम् ।। ३० ।।

अन्वयः—मणिस्तम्भैर्विभूषितं पद्मरागास्पद्माभसौपानैरूप शोभितं वेदी-मण्डप सम्बाधम् भाति ।।३०।।

अर्थः—मणियों के खम्भों से विभूषित पद्मराग मणि के कमल के समान शोभा वाली सीढ़ियों से सुशोभित बेदी और मण्डपों से वन भरा हूआ है ।।३०।।

मू०-अतीव निर्मलं कान्तं कामिनी काम वर्द्धनम् ।
बिनोदयन्नात्मजायां तत्ररामो रराम ह ।। ३१ ।।

अन्वयः—अतीव निर्मलं कान्तं कामिनी कामवर्द्धनम् तत्र आत्मजायां विनोदयन रामो रराम ह ।।३१।।

अर्थः—अत्यन्त निर्मल प्रकाश वाली, कामिनियों के काम को बढ़ाने वाली, उस भूमि पर अपनी प्रिया पत्नी को विनोदित करते हुए श्रीराम जी आश्चर्यमय रमण कर रहे हैं ।।३१।।

मू०-बिहरंतौ वनेतस्मिन्हरिचन्दन सज्ञिते ।
यत्र बृक्षालताः कुन्जाः हेमवल्कल शालिनः ।। ३२ ।।

मू०–नानाप्रसून प्रवरा युक्ता मत्तमधुव्रतैः ।
खगैः कनकचित्रांगैः कूजद्भिरभिनंदिताः ।। ३३ ।।

मू०–सुरत्नमणि माणिक्य वेदी मन्दिर मण्डिताः ।
सखीनां गान कलया सुगंधानिल सेविताः ।। ३४ ।।

अन्वयः–यत्र हेमवल्कलशालिनः वृक्षलताः कुञ्जाः नाना प्रसून प्रवरा मत्तमधुव्रतैः युक्ताः कनकचित्रांगैः कूजद्भिः खगैः अभिनन्दिता सुरत्नमणि माणिक्य वेदी मन्दिर मण्डिताः सुगंधानिल सेविताः सखीनां गान कलया हरिचन्दन संज्ञिते तस्मिन् वने विहरन्तौ ।। ३२, ३३, ३४ ।।

अर्थः—जहाँ पर सुवर्णमय वलकल वाले वृक्ष लता कुञ्ज हैं और नाना प्रकार के पुष्पों (फूलों) की महानता से मत्तवाले भ्रमर पराग पान कर रहे हैं, विचित्र अंग वाले बहुत से पक्षी अपने बोली से वन को आनन्दित किये हुए हैं, (तथा जहाँ पर) सुन्दर मणि माणिक्यों से रचित वेदी मन्दिर वन भर में भूषित है सुगन्धित वायु से सुसेवित सखियों के गान के कला उस हरि चन्दन वन में दोनों सरकार विहार कर रहे हैं । (३२, ३३, ३४)

मू०–क्रीडयंश्च ततः श्रीमान् ययौ वनमनुत्तमम् ।
पारिजात द्रुमैर्यत्र बेष्टितं परमाद्भुतम् ।। ३५ ।।

अन्वयः—ततः श्रीमान् रामः क्रीडयन् यत्र परमाद्भुतम् पारिजात द्रूमैः बेष्टितं उत्तमं वनं ययौ ।।३५।।

अर्थः – इसके बाद श्रीमान् रघुनाथ जी क्रीड़ा करते कराते हुए जहाँ पर परम अद्भुत परिजात वृक्षों से घिरा हुआ उत्तम वन है बहाँ गये। ।३५।। उसी वन में—

मू०–नाना रत्नमणिस्तम्भ कदंवैरन्वितं गृहम् ।
सर्वभोगैसमायुक्तं मनोभिलषितं च यत् ।। ३६ ।।

अन्वयः—सर्वभोगैः समायुक्तं मनोभिलषितं च यत् नानामणिस्तम्भ कदम्बैरन्वितं गृहम् ।।३६।।

अर्थः—सभी प्रकार के भोग सम्पत्तियों से परिपूर्ण मन के अभिलास को पूर्ण करने वाला, जहाँ नानामणियों के खम्भा समूहों से संयुक्त महल हैं ।।३६।।

मू०–मन्मथाविष्टहृष्टः सन् रमते सीतया सह ।
ततः संतान सम्पन्ने विपिने कुसुमाकरे ।। ३७ ।।

अन्वयः—ततः संतान सम्पन्ने कुसुमाकरे विपिने मनमथाबिष्ट हृष्टः सन् सीतया सह रमते ॥३७॥

अर्थः—संतान नामक वृक्षों से सम्पन्न बिविध फूल समूहों से युक्त वन में कामायुक्त शक्ति हर्ष से श्री सीता जी के सहित रमण करने लगे ॥३७॥

मू०—भ्रमद्भ्रमरसंघुष्टे भ्राजते परमान्विते ।
सखीनां गीत बादित्रे महापीठे मनोरमे ॥ ३८ ॥

अन्वयः—परमान्विते, भ्रमद्भ्रमरसंघुष्टे सखीनां गीत वादित्रे मनोरमे महापीठे भ्राजते ॥३८॥

अर्थः—पराग से रंगे हुए घूमने वाले भौरों (भ्रमरौं) कुन्ज में सखियों के गीत बादित्र आवाज में, मन रमणीय महापीठ के ऊपर परमा शोभा श्री किशोरी जी से युक्त सरकार शोभित हैं ॥३८॥

मू०—परमाद्भुत संकाशैः हास्यलास्य विनोक्रुत् ।
ययावन्यद्वनं यत्र नागकेशर मण्डितम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—परमाद्भुत संकाशैः हास्य लास्य विनोदकृत् । यत्र नागकेशर अन्यद्वनं तत्र ययौ ॥३९॥

अर्थः—परम अद्भुत आश्चर्य सदृश्य हास्य मन्दमुसक्यान (चेष्टायें) से विनोद करते हुए जहाँ नागकेशर नामक वृक्षों से विभूषित अन्य वन हैं, वहाँ गये ॥३९॥

मू०—यस्याविदूरे सरयू तीरं परम पावनम् ।
दृष्टवा सर्वाः प्रहृष्टास्ताः सख्यःप्रेमप्रपूरिताः ॥४०॥

अन्वयः—यस्याविदूरे परम् पावनं सरयू तीरम् दृष्ट्वा ताः सर्वाः सख्यः प्रेमप्रपूरिताः प्रहृष्टाः (अभूवन्) ॥४०॥

अर्थः—वे सभी प्रेम से भरी सखियाँ जिस नागकेशर वन के पास ही में परम पवित्र सरयू जी के किनारे को देख अतिप्रसन्न हो गयीं ॥४०॥

मू०—गायंत्योनृत्ययंत्यश्च हासयंत्यः परस्परं ।
परमानन्द जलधौ मग्नाकौतूहलन्विताः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—गायंत्योनृत्ययंत्यश्च परस्परम् हासयंत्यः कौतूहलान्विताः परमानन्द जलधौ मग्ना ॥४१॥

अर्थः—गायन करती हुई, नृत्य करती हुई, आपस में एक दूसरे को हँसाती हुई, अनेक प्रकार के परम कौतुकों से पूर्ण परम आनन्दमय जल समुद्र में डूब गयी ॥ ४१ ॥

मू०—एवं पुण्यारण्यानि चावृतानि नवानि च ।
तन्मध्येऽशोक वनिका सर्वेषामप्यगोचरा ॥ ४२ ॥

अन्वयः—एवं नवानि चावृतानि पुण्यारण्यानि तन मध्ये सर्वेषां अप्य-गोचरा अशोक वनिका ॥४२॥

अर्थः—इस प्रकार के नया-नया रूप धारण करने वाले चारों तरफ से घिरे हुए बहुत से पवित्र वन हैं, उनके बीच में सभी लोगों के इन्द्रियों के विषयों से परे श्री अशोक वनिका जी हैं ॥४२॥ यह अशोक वन—

मू०—पुंसामगोचरं स्थानं केवलं प्रेमदायकम् ।
नारीभाव समायुक्तास्तेषां दृश्यं भवेद्ध्रुवम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—केवलं प्रेमदायकम् पुंसामगोचरं स्थानं (ये) नारी भाव समायुक्ताः तेषां दृश्यं ध्रुवं भवेत् ॥४३॥

अर्थः—केवल अनुराग देने वाला यह अशोक बन का स्थान अहंकारमय (पुरुषार्थाभिमानी) पुरुषों के इन्द्रियों से अतीत है, जो नारीभाव से परिपूर्ण है उन्हीं के दृष्टि का विषय निश्चय करके होता है ॥४३॥

मू०—सुरुचिरवनं विलोक्य सर्वं विहरण शीलोलीलयारामः ।
जयति जनकजाजानिरीशोधीरोदात्त गुणाकरो रसिकः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—सर्वं सुरुचिर वनं विलोक्य धीरोदात्त गुणाकरो रसिकः जनकजा जानीरीशः लीलया विहरणशीलः जयति ।

अर्थः—सुन्दर सभी रुचिकर वनों को देखते हुए धीर उदात् गुणों के खानि रसिक शिरोमणि जनकजा हैं, प्राण जिनकी ऐसे स्वामी लीला पूर्वक विहार करते हुए जय-जय कार को प्राप्त हों ॥४४॥

इति श्रीमद्हनुमत्संहितायां परम रहस्ये महारासोत्सवे
श्रीहनुमदगस्त संवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीसीताराम रहस्य रसराजैकनिष्ठ दिनमणि आचार्य प्रवर अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्रीअग्रदेवाचार्य वंशावतंस श्रीस्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणार-विन्द मकरन्द रसलम्पट श्री जानकी शरण जी महाराज (मधुकर) द्वारा "श्रीहनुमत्संहिता" श्रीसीतारामरहस्य प्रकाशिका टीका द्वितीयोऽध्यायः।

* अथ तृतीयोऽध्याय *

श्री अगस्त उवाच—

मू०—श्रुत्वा श्रुत्वा रास रसं तववक्रान्महाकपे ।
न तृप्यति मनोमेद्य हविर्भु ग्घविषा यथा ।। १ ।।

अन्वयः—हे महाकपे तव वक्रान् रासरसं श्रुत्वा श्रुत्वा अद्य मे मनः यथा हविर्भूक् हबिषा तथा न तृप्यति ।।१।।

अर्थः—श्री अगस्त जी बोले कि हे महाकपी श्री हनुमान जी आपके मुखारविन्द से श्रीराम जी के रास रस को सुनते-सुनते आज वैसे ही मेरा मन जैसे अग्नि देवता द्रब्य पदार्थ से तृप्ति नहीं होते हैं, वैसे ही नहीं होता है ।।१।।

श्री हनुमान उवाच—

मू०—मुनिवर्य महाभाग धन्य धन्योसिधन्यक्रत ।
यथा स्पर्शमणेः स्पर्शाल्लोहोपि स्वर्णतां व्रजेत् ।। २ ।।

अन्वयः—महाभाग मुनिवर्यं यथास्पर्शेमणेः स्पर्शात् लोहोऽपि स्वर्णतां व्रजेत तथा धन्यक्रत धन्य धन्योसि ।।२।।

अर्थः—हे महाभागशाली, मुनि श्रेष्ठ श्री अगस्त जी महाराज जिस प्रकार पारसमणि के स्पर्श से लोहा भी सोनापन को प्राप्त कर लेता है, ऐसे ही आप धन्यमय पुण्य कर्त्तब्य करने वालों में अतिसय धन्य हैं ।।२।।

मू०—ततः सरय्वाः पुलिनं पवित्रं सुविस्तृतं कानक पादपैर्युतम् ।
प्रफुल्लिता पादशिखैर्विचित्रैर्भास्वन्मयूखैः परितः प्रसन्नम् ।।३।।

अन्वयः—ततः कानक पादपैर्युतं विचित्रैः प्रफुल्लिता पादशिखैः परितः भास्वन्मयूखैः प्रसन्नं सुविस्तृतं पवित्रं सरय्वा पुलिनम् ।।३।।

अर्थः- इसके बाद सोना के वलकल वालों वृक्षों से युक्त फूले हुए मूल से शिखर पर्यन्त विचित्र प्रकाशमान किरणों वाले फूलों से चारों तरफ आनन्दमय अति विस्तार पवित्र सरयू के किनारे ।।३।।

मू०-यत्सौरभैः स्वादुमयैः सदागतेर्गतागतैः पूरितविश्वखण्डम् ।
परिभ्रमंत्यो मधुपानमत्ता यत्रालि मालाः किलमंडिताश्च ।। ४ ।।

अन्वयः—यत् स्वादुमयैः सौरभैः सदागतेगतागतैः पूरित विश्वखण्डम् यत्रअलिमालाः किलमण्डिताश्च मधुपानमत्ताः परिभ्रमन्त्यो ॥४॥

अर्थः—जहाँ पर अति स्वादमय सुगन्धित वायु के आने-जाने से परिपूर्ण विश्व खण्ड है तथा जहाँ पर भ्रमरों का झुण्ड क्या ही अद्‌भुत विभूषित हो रहे हैं, पराग पान करने से मत्तवाले चारों तरफ घूम रहे हैं ॥४॥

मू०—महीमयूखैः खचिता महद्भिर्मणि प्रवालै रुचिरा समंतात् ।
हिरण्यमयी मूर्त्तिमती परा श्रीर्यत्राद्‌भुताः संतिजनाश्चनित्याः॥५॥

अन्वयः—महद्भिर्मणि प्रवालैः खचिता मयूखैः समंतात रुचिराहिरण्यमयी मूर्तिमती मही यत्र अद्‌भुताः नित्याः पराश्रीः जना सन्ति ॥५॥

अर्थः—महान् मणि मूँगादि रत्नों से चारों तरफ सुन्दर रचे हुए मूर्तिमती हिरण्यमयी (सुवर्णमयी) पृथ्वी जहाँ पर अद्‌भुत नित्य श्री जी के आश्रित जन हैं ॥५॥

मू०—जलानि शीतांशुकराकराणि गोक्षीर शंख द्युतिनिर्जितानि ।
सुधाशरन्मेघनिभानि कानि श्री मद्धरेश्चारु यशांसितानि ॥ ६ ॥

अन्वयः—गोक्षीर शंख द्यूति निर्जितानि शीतांशुकराकराणि जलानि मेघनिभानिकानि सुधाशर श्रीमद्धरेः चारु यशांसितानि ॥६॥

अर्थः—गाय के दूध और शङ्ख के प्रकाश को जीतने वाले चन्द्रमा के किरण समूह के समान जल है, जो मेघ मण्डल के समान, क्या तो अमृतमय अनन्त सरोवर है, श्रीमन् भगवान् के सुन्दर यश सदृश ॥६॥

मू०—हिमागमाच्छीत विडंवितानि स्वादूनिमाध्वी करसाद्वनानि ।
स्वच्छानि सच्चित्तसमानिकानि कर्पूरकुदाद्‌भुत दर्शनानि ॥७॥

अन्वयः—कर्पुरकुन्दाद्‌भुत दर्शनानि हिमागमत् सीतविडंवितानि सच्चित्त समानि कानि स्वच्छानि माध्वीकरसाद् स्वादूनि वनानि ॥७॥

अर्थः—जहाँ पर कपूर औंर कुन्द फूलों के सदृश अद्‌भुत दर्शन वाले हिम ऋतु के शीत को भी ठगने वाले सच्चिदानन्द सदृश्य वासन्तिक रसों से अतिसय स्वादिष्ट बहुत से वन हैं ॥७॥

मू०—महार्ह माणिक्य मणि प्रकारैर्वैदूर्य्य वज्रांकुर सुप्रसन्नैः ।
एभिःसदासत् सिकताभिरन्दिता विराजिता सा सरयू सरिद्वरा ।८।

अन्वयः—महार्हे माणिक्य वैदूर्य वज्रांकुर सु प्रसन्नैः मणिप्रकारैः एभिः सदासत् सिकताभि अन्विता सरिद्वरा सा सरयू विराजिता ॥८॥

अर्थः—जहाँ पर बिसकिमतीय माणिक्यों, वैदूर्य, हिरादि रत्नों के सुन्दर प्रकाश से मणिमय प्रकाश द्वारा कई प्रकार के सफेद, श्याम, आदि विविध रंगों से युक्त बालू वाली नदियों में श्रेष्टा वह सरयू जी बिराजमान हैं ॥८॥ वहीं सरयू—

मू०—बीची दूकूला सतपत्रबक्रानीलेक्षणाचारु कुमुद्वतीस्मिता।
अरालशैवाल बिशाल केशी भब्यांवरानब्य बधूरिवा भवत् ॥९॥

अर्थः—लहर (तरंग) रूपी साड़ी पहनी हुई सफेद कमल मुख वाली नील कमल कटाक्ष वाली सुन्दर कुमुद्वती मुस्कयान वाली किनारों पर सिवार रूपी सिर के केश वाली इस प्रकार कल्याणमयी वस्त्राभूषण युक्त अंग वाली सरयू जी नवीन उम्र वाली स्त्री की तरह हो गयीं ॥९॥

मू०—प्रफुल्लितं चारु चतुर्विधं महत्सरोरुहं षट्पदराजि वेष्टितं।
कुमुद्वन्तीन्दीवर मंजुमण्डितं काह्लार काह्लाद जलंव्यभासत् ।१०।

अन्वयः—षट्पदराजवेष्टितं चतुर्बिधं चारु प्रफुल्लितं महत्सरोरुहं कुमुद्वती इन्दिवर मंजुमण्डितं काह्लारक अह्लाद जलन्व्यभासत् ॥१०॥

अर्थः—भ्रमरों के झुण्डों से घिरे हुए सुन्दर खिले हुए चार प्रकार के महान् कमल (सफेद, लाल, नीले, पीले) सुन्दर कुमुदों और कमलों से रमणीय भूषण युक्त कल्लोल मचाती हुई आनन्दमय जल से अतिसय काह्लाक, अह्लाद से विशेष प्रकाशित हो रही हैं ॥१०॥

मू०—यत्राकराः कौस्तुभ पद्मरागस्यमंत वंशच्छद सुप्रभानां।
नानामणीनामति दीप्तिकानां वितर्किताकं प्रतिमाचशर्कराः ।११।

अन्वयः—अत्र कौस्तुभ पद्मराग स्यमन्त वंशच्छद सुप्रभानां अति दीप्तिकानां नानामणिनां अकाराः च वितर्किताकं प्रतिमा शर्कराः ॥११॥

अर्थः—जहाँ पर कौस्तुभ पद्मराग स्यमन्तक वंशच्छद (वंश के) आदि सुन्दर प्रकाश वाले अति प्रकाशमान नाना प्रकार के मणियों का और सूर्य के प्रकाश के समान तर्कना वाला बालू है ॥११॥ और—

मू०—चक्रांगदात्यूहससारिता रसाः सदारकावै जल कुक्कुटादयः।
क्रीडंति व्रीड़ां परिहृत्य सर्वे वसन्ति यत्राकलपन्ति पक्षिणः॥१२॥

अन्वयः—यत्र चक्रांगदात्यूह स सरिसारसाः वै सदारका जल कुक्कुटादय सर्वे व्रीड़परिहृत्य क्रीडयन्ति बसन्ति पक्षिणः कलयन्ति ॥१२॥

अर्थः—जहाँ पर चकोर, चकवा-चकवी, हंस, मैनाओं आदि सहित सारस निश्चय करके पत्नियों के सहित जल कुकुटादि पक्षी लज्या, संकोच को छोड़ करके विहार कर रहे हैं। सभी बसन्त ऋतु वाले पक्षी गण कल्लोल मचाये हुए हैं ॥१२॥

मू०-कंवुक संवुक ह्रस्वाश्च शुक्तिका वमन्ति मुक्तां भुजगाश्च कृच्छपाः।
अन्योन्याद्विष्टादिरहिता विदूराः पिवन्ति पीयूष निभानि कानि ॥

अन्वयः—कंवुक संवुक ह्रस्वाश्च शुक्तिका मुक्तां वमन्ति अन्योन्य द्विष्टादि रहिता भुजगाश्च कृच्छपाः विदूराः पीयूषनिभानि कानि जलं पिबन्ति ॥१३॥

अर्थः—शङ्ख, घोंघे, छोटे-छोटे सीपियां भी मोतियों को उगलते हैं, और सर्प, कछुवा, आपस में द्वेष रहित होकर अति समीप में रह करके अमृत की समानता करने वाले सरयू जी के जल को पीते हैं ॥१३॥

मू०-वनं वनं कमल मुखैर्विकसितं कुंदवृन्दमल्लिकाभिः।
स्मितरुचिराकृतावनिन्दौ परस्परेणाजिहितां श्रिया च ॥१४॥

अन्वयः—कुन्दवृन्द मल्लिकाभिः कमलमुखैर्विकसितं बनं बनं परस्परेणा जिहितां श्रिया च अनिन्दौ स्मितरुचिराः कृतौ ॥१४॥

अर्थः—कुन्द, वृन्द मलिकादि जाती के कमल है, प्रमुख जिनमें ऐसे फूले हुए प्रत्येक वन वन में आपस में एक दूसरे की शोभा को जीतने वाले और सब प्रकार के निन्दा से रहित मन्द मुस्क्यान युक्त सुन्दर आकृति वाले दोनों सरकार हैं। इसके बाद श्री हनुमान जी श्री सरयू जी की स्तुति कर रहे हैं ॥१४॥

मू०-हरिनयन सरोज विलास कारिणि प्रणतेश्च प्रणतेषु प्रसन्ने।
जगत प्रकदंव विडंवन श्री सरयूत्वं वर वर्णिनि प्रसीद ॥१५॥

अन्वयः—जगत् प्रकदम्व विडम्वन वरवर्णिनि च हरिनयन सरोज विलास कारिणि प्रणतेषु प्रसन्ने श्री सरयू प्रणतेः त्वं प्रसीद ॥१५॥

अर्थः—संसार के विपरीत मार्ग को ठगने वाली सुन्दर श्री विग्रह वाली भगवान् के नेत्र कमलों को विलास करने और कराने वाली प्रणाम करने वालों पर प्रसन्न

होने वाली हे श्री सरयू आपको नमस्कार है। आप (हम पर) प्रसन्न हो जायँ ॥१५॥

मू०–तज्जलेन जलजं तवश्रये येन येन पतिताः खगाद्यः ।
प्राणमोचन कृतेतत्क्षणाद्ब्रह्मरुद्रवसुदेन्द्र वन्दिताः ॥ १६ ॥

अन्वयः—ये खगाद्यः त्वं जलजं पतिता तज्जलेन प्राणमोचन कृतेपि दत्क्षणाद ब्रह्मरुद्र वसुदेन्द्र वंदिता भवन्ति ॥१६॥

अर्थः—जो पक्षी आदि जानवर जिस किसी भी प्रकार से गिरे हुये आपके जल जन्तुओं में उस जल के प्रभाव से प्राणान्त करने पर उसी क्षण ब्रह्मा, शंकर, बसु, इन्द्र आदिकों से वन्दित हो जाते हैं ॥१६॥

मू०–तन्मध्ये शोकवनिकादिब्य पादपसंकुला ।
प्रफुल्लिता चारुवती श्रीमद्भ्रमर मालिनी ॥ १७ ॥

अन्वयः—तन्मध्ये श्रीमद्भ्रमर मालिनी प्रफुल्लिता चारुवती दिब्य-पाद संकुला अशोक बनिका ॥१७॥

अर्थः— दिव्य भ्रमरों की माला से शोभित सुन्दर खिले हुए फूलों से अति शोभिता दिव्य वृक्षों से भरी हुई अशोक वनिका है, उन सरयू जी के मण्डल के मध्य में यह अशोक वन है ॥१७॥

मू०–ज्योतिष्मती मणिद्वीपवती प्रेमप्रदासती ।
रामप्रिया चक्ररूपा हरिनेत्र भवावृता ॥ १८ ॥

अन्वयः—नेत्रभवावृत्ता मणिद्वीपवती ज्योतिष्मती चक्ररूपा प्रेम-प्रदासती रामप्रिया ॥१८॥

अर्थः—यह अशोक वनिका भगवान् के नेत्र कटाक्षों से घिरी हुई मणिमय दीपकों वाली ज्योतिमय चक्ररूपा (भक्तों को) प्रेमानन्द देने वाले होते हुए भी श्री राम जी के अति प्रिया हैं ॥१८॥

मू०–तत्रचिन्तामणिभूर्मिर्वांछाधिक फलप्रदा ।
यद्गत्वा न निवन्तेते प्राणिनो भाग्य गौरवात् ॥ १९ ॥

अन्वयः—तत्र वांच्छाधिक फलप्रदा चिन्तामणि भूमिः प्राणिनों भाग्य गौरवात् यद्गत्वा न निवर्तन्ते ॥१९॥

अर्थः—वह अशोक वाटिका में चाहना से अधिक फल देने वाले चिंता मणिमयी भूमि है, प्राणी मात्र के सौभाग्य को गौरवत (भगवत् कृपा) से जहाँ जाने के बाद फिर संसार में लौट कर नहीं आते हैं ॥१६॥

मू०-तत्रगुल्मलतावृक्षा वज्रसारास्फुरत्व चः ।
प्रसार पत्र तिलका पद्मराग प्रसूनकाः ॥ २० ॥

अन्वयः—तत्र वज्रसारस्फुरत्व चः गुल्मलता वृक्षाः प्रसार पत्र तिलका पद्मराग प्रसूनकाः ॥२०॥

अर्थः—उस अशोक वाटिका में हिरादि मणियों के प्रकाश को भी फीका करने वाले प्रकाशमान वलकल वाले छोटे-छोटे वृक्ष तथा लतायें बड़े वृक्ष भी फैले हुए, पत्ता, डार, सब पद्मराग मणि सदृश्य फूल खिले हुए हैं ॥२०॥

मू०-प्रेमामृत रसैः पूर्णान्यनन्तानि फलानिहि ।
केवलं रसिकानां वै जीवनाज्जीवनानि च ॥२१॥

अन्वयः—ही वै केवलं रसिकानां जीवनात् च जीवनानि प्रेमामृत रसैः पूर्णानि अनन्तानि फलानि ॥२१॥

अर्थः—निश्चय करके एक मात्र रसिकों के जीवन के जीविका और प्रेमामृत रस से पूर्ण अनन्त फल हैं ॥२१॥

मू०-निर्मला बाटिकारम्या बेदादिभिरगोचरा ।
योगीयोग सुनिष्पन्नो यज्ज्योतिषिनिमज्जति ॥२२॥

अन्वयः—योग सुनिष्पन्नो योगी यज्ज्योतिषि निमज्जति बेदादिभिर-गोचरा निर्मला रम्या बाटिका ॥२२॥

अर्थः—प्रणयामादि अष्टाङ्गयोगों में पाराङ्गत योगी जिस ज्योति में विलीन हो जाता है, उस ज्योति से परे वेदादिकों से भी अगोचर निर्मल रमणीय वाटिकायें (उस अशोक वन में हैं) ॥२२॥

मू०-परमानन्द दासास्तु ब्रह्मज्योतिर्भिरावृता ।
तज्ज्योतिर्भेदने शक्ता रसिका रस वेदिनः ॥ २३ ॥

अन्वयः—ब्रह्मज्योतिर्भिरावृता परमानन्द दासास्तु रसवेदिनः रसिकाः तज्ज्योतिर्भेदने शक्ता ॥२३॥

अर्थः—"रस ब्रह्म ज्योति से आवृत, श्री सीताराम युगल रस के मर्मज्ञ जो परमानन्द को समर्पित है वही उस आवरण रूप ब्रह्म ज्योति को पार करने में समर्थ होते हैं ॥२३॥"

मू०—रामप्रसादादन्येषां गमनं न भवेत्कदा ।
तज्ज्योतिषः प्राणरूपी राजते सीतया सह ॥ २४ ॥

अन्वयः—रामप्रसादात् अन्येषां कदा गमनं न भवेत् तत् ज्योतिषः प्राणरूपी सीतया सह राजते ॥२४॥

अर्थः—श्री रामप्रसाद (कृपा) के अतिरिक्त अन्योपाय से कभी भी किसी प्रकार उस ज्योति का उलंघन नहीं हो सकता, क्योंकि उस ब्रह्म ज्योति के मूलस्वरूप प्राणरूपी परात्पर ब्रह्म श्री सीता जी के सहित श्रीराम जी प्रकाशमान हैं ॥२४॥

मू०-संतानकत्तरोरछाये दिव्य मण्डप मण्डिते ।
महार्हस्तोरणैः सम्यग्वेष्टिते मणिमालकैः ॥ २५ ॥

अन्वयः—संतानकत्तरोरछाये मणिमालकैः सम्यक् वेष्टिते महार्हस्तोरणैः मण्डिते दिव्य मण्डपे ॥२५॥

अर्थः—कल्प वृक्ष के छाया में मणिमय मालाओं से चारों तरफ सम्यक् प्रकार सजे हुए, बहुमूल्य तोरणादिकों से भूषित दिव्य मण्डप में ॥२५॥

मू०—नाना प्रसून गंधाढ्यैर्धूपवासैः सुवासिते ।
चिंतामणि महापीठे लसत्मणि गणांचिते ॥ २६ ॥

अन्वयः—नाना प्रसून गंधाढयैर्धूपवासैः सुवासिते लसत् मणिगणानां चित्ते चिंतामणि महापीठे ॥२६॥

अर्थः—नाना प्रकार के सुगन्धित फूलों से परिपूर्ण विविध धूप वास से सुगन्धित मणि समूहों से सुसज्जित चिंतामणिमय महासिंहासन में ॥२६॥

मू०—पद्म दिब्यार्क संकासे दृष्टि विभ्रमकारके ।
कोमलास्तरणे शुभ्रे विराजते सुदम्पतिः ॥ २७ ॥

अन्वयः—दृष्टिविभ्रमकारके पद्मदिब्यार्क संकासे शुभ्रे कोमलास्तरणे सुदम्पतिः विराजते ॥२७॥

अर्थः—दृष्टि को चकाचौंध लगाने वाला कमल सदृश दिव्य सूर्य के प्रकाश में स्वच्छ कोमल बिछावन के ऊपर सुन्दर दम्पत्ति श्री सीताराम जी विराजमान हैं ॥ २७ ॥

मू०—तयोः कटाक्ष मात्रेण ब्रह्माण्डानां सहस्रशः ।
आविर्भावास्तिरोभावा भवंत्यपि न संशयः ॥ २८ ॥

अन्वयः—तयोः कटाक्षमात्रेण सहस्रशः ब्रह्माण्डानां आविर्भावास्तिरोभावा भवंत्यपि संशयः न ॥२८॥

अर्थः—उन दोनों युगल सरकार के कटाक्ष मात्र से हजारों (करोड़ों) ब्रह्माण्डों का उत्पत्ति प्रलय भी हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥२८॥

मू०—महाशम्भु सहस्रस्य महाब्रह्मशतस्य च ।
सृष्टिस्थिलयानां च कर्त्ता श्री रघुनन्दनः ॥ २९ ॥

अन्वयः—श्री रघुनन्दनः महाशम्भु सहस्रशः च महाब्रह्मशतस्य सृष्टि-स्थिति लयानां च कर्त्ता ॥२९॥

अर्थः—श्री रघुनन्दन जी तो हजारों महाशम्भु और सैकड़ों महाब्रह्म इन सबके उत्पत्ति पालन प्रलय भी कर्त्ता हैं ॥२९॥

मू०—रमते सीतया सार्द्धं प्रेम्णाप्रेम रसास्पदः ।
हास्यलास्यकटाक्षैश्च मोदयन जनकात्मजाम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—प्रेमरसास्पदः जनकात्मजां हास्यलास्य कटाक्षैः च मोदनं प्रेमणा सीतयासार्द्धं रमते ॥३०॥

अर्थः—प्रेम रस के मूल स्थान श्री रघुनन्दन जी श्री जानकी जी को अपने मुसक्यान, प्रेममयी चेष्टा कटाक्षों से आनन्दित करते हुए श्री सीता जी के साथ रमण करते हैं ॥३०॥

मू०—असृजद्विश्वसृक् सश्वन्मनसा मनसोद्भवं ।
दुर्निवारं सुचार्वंगं रत्या सहरघुत्तमः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—विश्वसृक् रघुत्तमः रत्या सह मनसोद्भवं सुचार्वंगं दुर्निवारं असृजत् ॥३१॥

अर्थः—विश्व सृष्टि करने वाले श्री रघुनाथ जी रति के सहित सुन्दर अंग वाले दुःखकर के निवार्य कामदेव को मन से उत्पन्न किये ॥३१॥

मू०--दृढ़व्रत व्रतहरमाकीट ब्रह्ममोहनं ।
प्रसूनचांपत्रिगुणं विभ्रत्पंचेषुभिः सह ॥ ३२ ।,

अन्वयः—आकीट ब्रह्ममोहनं दृढ़व्रत व्रतहरम् त्रिगुणं प्रसूनचांप पंचेषुभिः सह विभ्रत् ॥३२॥

अर्थः—कीड़े-मकोड़े से लेकर के ब्रह्मा पर्यन्त सभी दृढ़ ब्रत वालों के व्रत को हरण करने वाले (कामदेव) तीन प्रत्यंचा वाला फूल के धनुष को पाँचों वाणों से सजे हुए शोभित हैं ॥३२॥

मू०-दम्पत्योः साम्प्रतंचित्तं मोहयन्तत्र कानने ।
प्रियः प्रियां कटाक्षेण क्षितेना कलनेन च ॥ ३३ ॥

अन्वयः—प्रियः तत्रकानने प्रियां आकलनेन च क्षितेन कटाक्षेण साम्प्रतं दम्पत्योः चित्तं मोहयन् ॥३३॥

अर्थः—श्री प्रीतम जू उस वन में प्रिया जू को बुलाने से मन्द मुस्क्यान द्वारा प्रिया जू के चित्त को आकर्षण करने से दोनों सरकार के चित्त को इस समय मोहित करते हुये ॥३३॥

मू०-बोधयामास तां प्रेम्णास्वेच्छया रमणेच्छया ।
रघुवश यशश्चन्द्रः कान्ताभिः सहतस्य वैं ॥ ३४ ॥

अन्वयः—वै तस्य रघुवंश यशश्चन्द्रः प्रेम्णास्वेच्छया रमणेच्छया कांताभिः सह तां बोधयामास ॥३४॥

अर्थः—उस कामदेव के प्रभाव से निश्चय करके रघुवंश के कीतिरूपी चन्द्रमा श्रीराम जी अनुराग पूर्वक स्वतन्त्र रमण करने की चाहना से सभी कान्ताओं के सहित उन श्री सीता जी को समझाने लगे ॥३४॥

मू०-रामस्य हृद्गतिं ज्ञात्वा जानकी स्वां गतोऽसृजत् ।
नार्य्यष्टादश्च सहस्रमष्टोत्तरशतैर्युतम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—जानकीः रामस्य हृद्गतिं ज्ञात्वा स्वांगतो अष्टादश सहस्रं अष्टोत्तर शतै युतं नार्य्यः असृजत् ॥३५॥

अर्थः—श्री जानकी जी ने श्रीराम जी के हृदय गति को समझ करके अपने अङ्गों से अठारह हजार एक सौ आठ के सहित स्त्रियों को प्रगट किये ॥३५॥

मू०–बह्निशुद्धां सुकांचानाः सर्वाभरण भूषिताः ।
किशोर्यः परमाह्लाद जनन्यः परमाद्भुताः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—बह्निशुद्धां सुकांचानाः सर्वाभरणभूषिताः किशोर्यः परमाद्भुताः परमाह्लाद जनन्यः ॥३६॥

अर्थः—उपरोक्त सभी स्त्रियाँ अग्नि के समान शुद्ध स्वरूपा सुन्दर कंचनमयी शरीर वाली सभी प्रकार के वस्त्राभूषणों से भूषिता किशोर अवस्था सम्पन्ना अद्‌भुता परम आनन्द को पैदा करने वाली हुई ॥३६॥

मू०–रूपयौबन शालिन्यो मालिन्यः पद्मलोचनाः ।
नानागुणाढ्याश्चार्वंग्यः कामशास्त्र विशारदाः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—पद्मलोचनाः रूपयौवन शालिन्यो मालिन्यः चार्वंग्यः नानागुणाढ्याः काम शास्त्र विशारदाः ॥३७॥

अर्थः—कमल के समान नेत्र वाली (बे सब नारियाँ) रूप यौवन से परिपूर्ण सुन्दर मालादि भूषणों को पहनी हुई सुन्दर शरीर वाली नाना प्रकार के विलास गुणों से भरी हुई कामशास्त्र की बड़ी पण्डिता हैं ॥३७॥

मू०–नानेंगित समायुक्ता रामप्रेम प्रपूरिताः ।
तत्र काश्चित्पद्मगन्धाः काश्चित् मालति सौरभाः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—रामप्रेम प्रपूरिताः नानेंगित समायुक्ता काश्चित् तत्र पद्मगन्धाः काश्चित् मालति सौरभाः ॥३८॥

अर्थः—ये सभी नारियाँ श्रीराम प्रेम में परिपूर्ण और नाना प्रकार की चेष्टाओं से युक्त कोई उनमें से कमल के समान गन्ध वाली है और कोई मालती के समान गन्ध वाली हैं ॥३८॥

मू०–मल्लिकागन्धवत्यश्च केतकी सौरभान्विताः ः
पटलामोदवत्यश्च काश्चित्काश्मीर सौरभाः ॥ ३९ ॥

अर्थः—बहुत सी मल्लिका फूल के समान गन्ध वाली है, कोई केतकी के फूल के समान गन्ध वाली, कोई गुलाबी रंग आनन्द वाली, कोई केशर के समान सुगन्ध वाली ॥३९॥

मू०-सर्व गन्धयुताश्चान्या मदविह्वलितेक्षणाः ।
सीताभाः असिताभाश्च काश्चित्क्षतजभा शुभाः ।।४०।।

अर्थः—कोई सभी प्रकार के सुगन्धों से पूर्ण अङ्ग वाली अन्य कोई विह्वल हृदय से कटाक्ष वाली, कोई सफेद रंग की, कोई श्याम रंग की, कोई लाल कमल के समान रंग वाली कल्याणमयी श्री विग्रह वाली ।।४०।।

मू०-निर्दग्धकनकाभांगानाना वर्णाश्च कोटिशः ।
मुख्यास्तेनाधिका रम्यादास्यस्तासां सहस्रसः ।।४१।।

अर्थः—कोई विशेष तपाये हुए सोने के समान अङ्ग वाली और भी नाना रंग वाली करोड़ों की संख्या में प्रधाना उनसे भी अधिक रमणीया मुखचन्द्रवती और भी उनमें हजारों की संख्या में ।।४१।।

मू०-एकैकशः प्रयत्नेन सेवन्तेनिशमुत्तमाः ।
दृष्ट्वा ता भगवान् रामोरमणेच्छुरभूद्विभुः ।।४२।।

अन्वयः—उत्तमा एकैकशः अनिशं प्रयत्नेन सेवते विभू भगवान् रामो-रमणेच्छुः अभूत् ।।४२।।

अर्थः—जो सभी लोग परम उत्तम हैं वे एक-एक करके दिन-रात बड़े प्रयत्न के साथ सेवा करती हैं, और यह देखकर व्यापक भगवान् (समर्थ) श्रीराम जी को रमण करने की इच्छा हुयी ।।४२।।

मू०-आतमस्वरूपाननुगांश्चब्य सृजत्पुरुषान्वरान् ।
श्यामलान्सस्मितमुखान्सर्वाभरणभूषितान् ।।४३।।

अन्वयः—च (ततः) श्यामलान् सस्मितमुखान सर्वाभरणभूषितान् आतमस्वरूपान वरान् अनुगान पुरुषान् ब्यसृजत् ।।४३।।

अर्थः—और इसके बाद श्याम रंग के मुसक्यान युक्त मुख वाले सभी प्रकार के वस्त्राभूषणों से भूषित आतम स्वरूप ही अपने अनुकूल श्रेष्ठ पुरुषों को उत्पन्न किये ।।४३।।

मू०-किशोरान्कमनीयांश्च कामविद्या विशारदान् ।
रसास्वादनुगुणांश्च किरीट कुंडलांवितान् ।।४४।।

अन्वयः—च किशोरान्कमनीयां कामविद्या विशारदात् रसास्वादानुगुणां च किरीट कुण्डलान्वितान् ॥४४॥

अर्थः—और वे सब किशोर अवस्था वाले अति सुन्दर काम विद्या में महामण्डित रसास्वादन (अनुकूल) अनुगुण और किरीट कुण्डलों से युक्त ॥४४॥

मू०-ते सर्वे विपिनं दृष्ट्वा शोभमानं मनोरमम् ।
कामाभिवाण संविद्धामत्त गान समुत्सुकाः ॥४५॥

अन्वयः—ते सर्वे शोभमानं मनोरमम् विपिनं दृष्ट्वा कामाभिवाण संविद्धा मत्तगान समुत्सुकाः ॥४५॥

अर्थः—वे सभी रूप (विलास सम्पति से युक्त) अतिशय शोभायमान मन रमणीय वन को देख कामवाणों से बेधित मतवाले गानों को सुन कर अतिशय उत्सुक हो गये ॥४५॥

मू०-बिधुमुखशीधुमधुव्रतोयोरसिक नायको जयत्यन्तात्मापटु ।
जलद पटल नीलो बिबिध रतिविदग्धनागरो रामः ॥४६॥

अन्वयः—जलद पटल नीलो विविधरति विग्धनागरो अनन्तात्म पटु विधुनुखशीधुमधुव्रतोयोरसिक नायको रामः जयति ॥४६॥

अर्थः—अनेक प्रकार के रति विलास विद्या के श्रेष्ठ पण्डित नील मेघ मण्डल के सदृश्य वर्ण वाले अनन्त रूप धारण करने में कुशल चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाले श्रेष्ठ भ्रमर का व्रत लिये हुए रसिक नायक श्रीराम जी हैं, उनकी जय हो ॥४६॥

इति श्रीमद्हनुमत्संहितायां परम रहस्ये महारासोत्सवे
श्रीहनुमदगस्त संवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीसीताराम रहस्य रसराजैकनिष्ठ दिनमणि आचार्य प्रवर अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्रीअग्रदेवाचार्य वंशावतंस श्रीस्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द मकरन्द रसलम्पट श्री जानकी शरण जी महाराज (मधुकर) द्वारा "श्रीहनुमत्संहिता" श्रीसीतारामरहस्य प्रकाशिका टीका तृतीयोऽध्यायः ।

* अथ चतुर्थोऽध्यायः *

श्री अगस्त्युवाच—

मू०-शुष्कं कर्णबिलं मेघतववाचासुवारिणा ।
पूरयस्व महाभाग सदानुग्रह भाग्यतः ।। १ ।।

अन्वयः—यतः हे सदानुग्रहभाग्यतः मेघ महाभाग शुष्कं कर्णविलं तव वाचा सुवारिणा पूरयस्व ।।१।।

अर्थः - श्री अगस्त जी बोले—हे सदानुग्रह, कृपा करने वाले महाभागशाली मेघ श्री हनुमान जी (मेरे) सूखे कानरूपी विलों को आपकी वाणी रूप सुन्दर जल से पूर्ण कीजिए ।।१।।

श्री हनुमान उवाच—

मू०-कुहूकुहूनादरटन् मुहुर्मुहुर्न्नटन्नटंश्चूत नवांकुरेषु ।
उन्मत्त उत काकभृतः प्रमत्तः प्रियः प्रियायाः कलनं करोति ।।२।।

अन्वयः—प्रमतः प्रियायाः प्रियः उत्त उन्मत्त काकभृतः चूतनवांकुरेषु मुहुः-मुहुः नटन-नटन कुहु-कुहु नाद रटन् कलनं करोति ।।२।।

अर्थः—मतवाले प्रियाओं के प्रियतम क्या तो, उन्मत्त कोमल बनकर आम के नवीन अंकुरों में बार-बार नाचते-नाचते कुहूँ-कुहूँ ऐसा नाद रटते-रटते सुन्दर कल्लोमय गान कर रहे हैं ।।२।।

मू०-नृत्यतिमत्ताः शिखिनः समंताद्गायन्ति गीतं शुकसारिकादयः।
अन्येद्विजाश्चारु मयूरदारैर्मुखैश्चवाद्यानभिवादयन्ति ।।३।।

अन्वयः—समंतात् मत्ताः शिखिनः चारू मयूरदारैः नृत्यन्ति शुकसारिकादयः गीतं गायन्ति च अन्येद्विजाः चारुमुखैः बाद्यान् अभिवादयन्ति ।।३।।

अर्थः—(वन के) चारों तरफ मतवाले मोर अपनी सुन्दर पत्नियों के साथ नृत्य कर रहे हैं । शुक, सारिका आदि पक्षी गीत गा रहे हैं । और अन्य बहुत से पक्षी सुन्दर मुखों से विविध प्रकार के वाद्यों को सम्यक् प्रकार बजा रहे हैं ।।३।।

मू०-अदृष्ट पूर्वाश्च मृगाश्च गावोग्रासं जजक्षुरभितस्तदाकिल ।
दृष्ट्वा रघुणां प्रवर प्रभाव मर्द्धार्द्धमश्नंति त्यजंतिचार्द्धं ।।४।।

अन्वय:—तदाकिल रघुणां प्रवर प्रभावं दृष्ट्वा अदृष्टपूर्वा: अभित मृगाश्चगावो ग्रासं जजक्षु: अर्द्धंमर्द्धंमश्नंति च अर्द्धं त्यजन्ति ।।४।।

अर्थ:—उस समय रघुवंश में श्रेष्ठतम श्रीराम का प्रभाव देखकर जो, पहले किसी के द्वारा नहीं देखे गये थे, ऐसे मृग तथा गायें, ग्रासों को खाते हुए आधा ही खाते हैं, आधा छोड़ देते हैं ।।४।।

मू०-निमेषहीनोर्द्धमुखाः समंताद्विषाण कर्णौकृतवंतएकै ।
मुञ्चंति नेत्रैर्जलविंदुमुत्तमंस्तब्धानि रोमाणि षडिंद्रियाणि ।।५।।

अन्वय:—समंतात् निमेष हीनोर्द्धमुखाः विषाण कर्णै एकै कृतवन्तः नेत्रैः उत्तमः जल विन्दुमुंचति रोमाणि पड्िन्द्रियाणि स्तब्धानि ।।५।।

अर्थ:— उस वन के चारों तरफ चरने वाली मृग और गायें अपलक नेत्रों से अपने मुख को आकाश की तरफ उठाकर अपने कान और सींग को एक करते हुए, नेत्रों से उत्तम जल विन्दुओं को बहा रहे हैं, तथा जिनके रोम कूप और छः ज्ञानेन्द्रियाँ स्तम्भित हो गयी हैं ।।५।।

मू०-दृष्ट्वाद्भुतं रासरसं मनोज्ञं योगीवभोगीगतदेहबुद्धिः ।
विनिः सृतार्द्धोविवराद्धराच्चनिश्चेष्टितोभेक निमग्नभोगः ।।६।।

अन्वय:—अद्भुतं मनोज्ञं रासरसं दृष्ट्वा भोगी योगीव गतदेह बुद्धि भेक भोगः धरात् विवरात् च विनिः सृतार्द्धो निश्चेष्टितो निमग्नः ।।६।।

अर्थ:—अद्भुत मन रमणीय रास रस को देख करके सभी भोगाशक्त लोग योगियों की तरह देह बुद्धि रहित हो गये । मेढक खाने वाला साँप पृथ्वी से और बिलों से आधा निकल करके चेष्टाहीन होकर आनन्द मग्न हो गया ।।६।। (गी० अ० २ श्लोक ५९) के अनुसार सूक्ष्म चाहना (बासना) कि निवृति तत् पद वाच्य सर्व स्वतन्त्र प्रेरक परमात्मा का (नाम, रूप, लीला, धाम) दर्शन होने पर हो जाती है यहाँ स्पष्ट रूप से दिखता है ।

मू०-काचिच्च पंचानन मध्य मध्यामालेव वाला प्रियकंठलग्ना ।
अभ्रं परिभृच्चपलेव चंचला श्यामा चलान्निः सृतहेमधारा ।।७।।

अन्वय:—काचित् बाला पंचानन मध्य मध्या माला इव प्रियकण्ठ लग्ना चपलेव चञ्चला अभ्रं परिभृत श्यामाश्चलात् निसृत हेमधारा ।।७।।

अर्थः—और सिंह के कमर के समान कमर वाली कोई बाला माला की तरह से प्रियतम के कण्ठ में लगी हुई, मेघ में लपटी हुई या विजुली की तरह चंचला श्याम पर्वत से निकली हुई सोने की धारा सी शोभित हो रही है ।।७।।

मू०—काचिच्चरामा रमणीय वेषाकामावशाद्राम मुखं चुचुम्वे ।
मुदा सरचन्द्रमसः सकाशात्सुधां ययाचे च चकोरिका किम् ।।८।।

अन्वयः—च रमणीय बेषा काचित् रामा काम अवशात् राममुखं चुचुम्बे च मुदा सरच्चन्द्रमसः सकाशात् किं चकोरिका सुधां ययाचे ।।८।।

अर्थः और रमणीय शृंगार वाली कोई रामा काम के सम्यक् प्रकार वस में होकर श्रीराम जी के मुख को चूम रही हैं, किंवा आनन्द में भर कर के शरदपूर्णिमासी के चन्द्रमा से क्या चकोरी अमृत की याचना कर रही हैं ? ।।८।।

मू०—नब्यासुभब्या युत सब्य दक्षिणे भुजौ ददौ चारुगले प्रियायाः।
स्वर्णाद्रिमध्ये पतिता यथाचला धाराद्विधा भूमकलिंदजायाः ।।९।।

अन्वयः—सब्यदक्षिणे नब्यासुभब्या अयुत प्रियायाः चारुगले भुजौ ददौ यथा कलिंदजायाः चला धाराद्विधाभूम स्वर्णाद्रिमध्ये पतिता ।।९।।

अर्थः—दाहिने बायें तरफ नवीना अतिसय सुन्दरी दस हजार की संख्या में प्रियाओं के मध्य, प्रिया जू के सुन्दर गले में दोनों भुजाओं को दिये हुए प्रियतम ऐसे शोभित हैं, जैसे यमुना जी को चलायमान दो धारायें सोने के पहाड़ के मध्य में गिरी हुई हैं ।।९।।

मू०—उत्फुल्लतापिच्छ समंस्फुरद्वपुर्नितम्बिनी मध्यगत शुभ्रप्रदम् ।
विभाति तन्मन्मथचित्तमर्दनं यथातरु स्वर्णलताभिरावृता ।।१०।

अन्वयः—नितम्विनी मध्यगतं मन्मथचित्तमर्दनं उत्फुल्लतापिच्छसमं वपुः स्फुरत् स्वर्णलताभिरावृतम् यथा तरु वपुः विभाति ।।१०।।

अर्थः—सुन्दर नितम्ब वाली के मध्य गत (कमर) शुभ प्रदान देने वाले कामदेव के मन को मर्दित करने वाले जिस प्रकार सोने के लता से लपेटे हुए, तरु के समान मोर पंख के समान वर्ण श्री विग्रह (प्रियतम जू) शोभित हो रहे हैं ।।१०।।

मू०—काचित्क्वचिच्चित्कुंज गतासुबाला कामाकुला रामसुखंनिरीक्षती।
ह्रियार्नकिंचिद्वदति स्वभिज्ञा करे करन्यासविदस्यकिंचित् ।।११।।

अन्वयः—करन्यास विदस्य करे स्वभिज्ञा क्वचित्कुंजगता सुबाला कामाकुला राममुखं निरीक्षती ह्रिया किंचित् न वदति ॥११॥

अर्थः - हाथ के संकेत को जानने वाले के हाथ के संकेत को अपने लिए कुछ समझ कर कोई सुन्दरी बाला किसी कुञ्ज में पहुँची हुई, श्रीराम मुख को देखती हुई, लज्जा से कुछ बोलती नहीं है ॥११॥

मू०—काचिच्चवाला विमलानिकुंजे सुखेनरामं परिरंभ्यसस्मिता ।
निरीक्षतीचारुमुखं श्रियायुतं पुनः पुनश्चुम्बति सादरेण ॥१२॥

अन्वयः—काचित् विमला वाला सुखेन निकुञ्जे सस्मिता रामं परिरम्य-श्रियायुतं चारुमुखं निरीक्षती पुनः पुनः सादरेण चुम्बति ॥१२॥

अर्थः—कोई सुन्दरी बाला सुख पूर्वक किसी कुञ्ज के भीतर मन्द-मन्द मुसक्याती श्रीराम जी को आलिङ्गन करके शोभा युक्त सुन्दर मुख श्रीराम जी को देखती हुई बड़े आदर पूर्वक बार-बार चूमती है ॥१२।

मू०—कांतामुखं वीक्ष्य रघुत्तमेन विहस्य पद्मानन मात्मनस्ततः ।
पुनः कथं संकुचितं च चुंबने दृष्ट्वा शरच्चंद्रमसः प्रकाशम् ।१३।

अन्वयः—ततः शरदचन्द्रमसः प्रकाशं आत्मनः पद्माननं रघुत्तमेन विहस्य कान्तामुखं बीक्ष्य पुनः कथं चुम्वने संकुचितं दृष्ट्वा ॥१३॥

अर्थ-उसके बाद श्री रघुनन्दन शरदपूर्णिमा के चन्द्र प्रकाश के समान अपने कमल मुख से हँस करके प्यारी के मुख को देख कर फिर किसी प्रकार चुम्बन करने से संकुचित देख कर ॥१३॥

मू०—वराननी वराननां गगामुदा विराजते कदाकुहुक्षयांतरे किमुद्गता सुचन्द्रिका । विदग्ध चारु नागर व्रतौरस प्रिया क्वचिद्यथा नवीन नीरदैः समाचितौ सुभूधरौ ॥१४॥

अन्वयः - रसव्रतौ विदग्धचारु नागरः क्वचिद् प्रिया यथा नवीन नीरदैः सुभूधरौ समाचित्तौ मुद्रा बराननां गगाविराजते कदा बराननी कुहुक्षपान्तरे सुचन्द्रिका किं उद्गता ॥१४॥

अर्थः—रस ही भोग करना है, व्रत जिसका रस व्रत में पण्डित सुन्दर चतुर प्रियतम जू कहीं परम प्रिया को जैसे नवीन मेघों के द्वारा सोने के दो पहाड़ को

घेरा जाता है । इस प्रकार पकड़ के आनन्द में भर कर प्रिया का गीत गाते हुए विराजमान हो रहे हैं । वह सुन्दर मुख चन्द्रवती भी कभी श्रावण के अमावश्या के घोर रात्रि में क्या सुन्दर चन्द्रिका उदय हुई है ॥१४॥

मू०-सुरांगणानरांगणा समीरपांगनागणे वरांगणा पदत्विषा विनिर्जिता सुभामिनी । प्रिया, प्रियेण विद्‌धृता प्रनृत्यतीशुचिस्मिता विलोल पाच्चब्यन्य सतपटां चलं सुचंचला ॥१५॥

अन्वयः—सुरांगणानरांगणा समीरपांगना गणे बिनिर्जिता पदत्विषा वरांगणा सुभामिनी प्रियाप्रियेण विद्‌धृताशुचिस्मिता प्रनृत्यती च विलोलया पटांचलं सुचंचला सुव्यन्यसत् ॥१५॥

अर्थः—देवकन्या, राजकन्या, गाग कन्याओं के समाज में अपने प्रभाव से सबके प्रभाव को जीत लेने वाली श्रेष्ठ नारी सुन्दर प्रकाशवती प्रिया (सीता) को प्रियतम ने (दोनों हाथों से) पकड़े तो मन्द मुसक्याती हुई ऐसा नृत्य किया उनकी चंचलता से शरीर के सभी कपड़े अत्यन्त चंचल हो करके शोभित हो रहे हैं ॥१५॥

मू०-नृत्यश्रमायाः शिथिलीकृतांगया मल्लिप्रसूनानि पतन्ति केशात् । अपूर्व शोभां नितरां प्रपेदिरे जलोपलानां विकिरंतिमेद्याः ॥१६॥

अन्वयः—नृत्यश्रमायाः शिथिली कृतांगया मल्लिप्रसुनानि केशात् पतन्ति मेघाः जलोपलानां विकिरंति (इव) नितरां अपूर्व शोभां प्रपेदिरे ॥१६॥

अर्थः—नृत्य के परिश्रम से ढीले हुए अंग वाली के केशों से मालती फूल गिर रहे हैं, मानो (जैसे) मेघ जल के पत्थरों को फेंकते हैं । इस प्रकार अतिसय अपूर्व शोभा प्राप्त हो रही है ॥१६॥

मू०-अलोलपाणि चरणास्मित दृग्विभंगी विभ्रच्चलद्वलय कंकण-नूपुरादीन् । आश्लिष्ट कंठकुचको जनकात्मजाया रामोरराज भवनाटक नाट्यवेषः ॥१७॥

अन्वयः—चलत् बलय कंकण नूपुरादीन् विभ्रत् जनकात्मजायाः आश्लिष्ट कण्ठ कुचकः अलोल पाणि चरणास्मितदृग्विभंगी नाटक भवः नाट्य वेषः रामोरराज ॥१७॥

अर्थः—चंचल कंकण नूपुरादिकों को धारणा की हुई श्री जानकी जी कण्ठ कुच आलिङ्गित अङ्ग वाले अचंचल हाथ, पैर, मन्द मुसक्यान, नेत्रों के टेढ़ी कटाक्ष वाले नाटक जनित वेषयुक्त श्रीराम जी शोभित हो रहे हैं ॥१७॥

मू०—लसल्ललित नीरद द्यूतिदलद्वपुः श्यामलम् ।
दधत्सुस्थिर तडिल्लता जनकनन्दिनी वामतः ॥ १८ ॥

अन्वयः—सुस्थिर तडितलता जनकनन्दिनी वामतः दधत् ललित नीरद द्यूति श्यामल वपुः दलत् लसत ॥१८॥

अर्थः—अचंचल विजली सदृश्य लता स्वरूप श्री जानकी जी को वाम अंग में धारण किये हुए, सुन्दर मेघ के समान प्रकाशमान श्याम शरीर को हिलाते हुए शोभित हो रहे हैं ॥१८॥

मू०—कलित कमल कौतुकं निजजनस्य संजीवनम ।
हरत्हररिपोर्मनोर्रसिक मौलि मालं भजे ॥ १९ ॥

अन्वयः—हररिपोर्मनोहरत् कलित कमल कौतुकं निज जनस्य संजीवनं रसिक मौलिमालं भजे ॥१९॥

अर्थः- श्री शंकर जी शत्रु कामदेव के मन को हरते हुए हाथ में कमल को घुमाते हुए (शोभित) अपने निजी जनों के प्राण संजीवन रसिक मौलि माला को (मैं) हम भजते हैं ॥१९॥

मू०—रामस्य वामे दक्षे च राजते मत्तकामिनी ।
यथासूत्रैर्मरकतं वेष्टितं पुरटं वहिः ॥ २० ॥

अन्वयः—रामस्यबामे च दक्षे मत्तकामिनी यथा पुरटं सूत्रैः बहिः मरकतं बेष्टितं राजते ॥२०॥

अर्थः—श्रीराम जी के बायें और दाहिने मत्तवाली कामिनियाँ जिस प्रकार सोने के धागा से बाहर में मरकतमणि पोही (गुंथी) जाती हैं, इस तरह से शोभित हैं ॥२०॥

मू०—मृदङ्ग मुरली बीणा पणवानक झर्झरान् ।
वादयन्ति प्रयत्नेन नानायन्त्राश्च नारिकाः ॥ २१ ॥

अन्वयः—नारिकाः मृदङ्ग मुरली बीणा पणवानक झर्झरान् च नाना-यंत्राः प्रयत्नेन बादयन्ति ॥२१॥

अर्थः—(उस रास मण्डल में) श्री किशोरी जी की सखियाँ मृदंग, मुरली, बीणा, पणव (दूद्दी) झालों को तथा और भी नाना प्रकार के यंत्रों को, सुन्दर ताल स्वर से यत्नपूर्वक बजाती हैं ॥२१॥

मू०-सप्तस्वरेण गायन्ति छोलाक्यं रागरागिणी ।
माधुर्येणवरार्हेण विदग्धा राम सद्गुनान् ॥ २२ ॥

अन्वयः—राम सद्गुदान् विदग्धा वरार्हेण माधुर्येण सप्तस्वरेण छोलाक्यं रागरागिणी गायन्ति ॥२२॥

अर्थः—श्रीराम जी के उत्तम गुणों को जानने में पण्डिता उत्तम ढंग में माधुर्य पूर्वक सातों स्वरों से मन को उमङ्ग पहुँचाने बाली रागरागिनियों को गातीहैं ॥२२॥

मू०-तेन बाद्येन गानेन मोहितो रघुनन्दनः ।
स्वगुणेन गुणग्राही कामिनी कामनास्पदः ॥ २३ ॥

अन्वय—स्वगुणेन गुणग्राही कामिनी कामनास्पदः रघुनन्दनः तेन गानेन वाद्येन मोहितः ॥२३॥

अर्थः—अपने गुणों से ही आश्रितों के गुणों को ग्रहण करने वाले अपनी कामिनियों के सभी कामों के निवास स्थान श्री रघुनाथ जी उन संगीत गान वाद्यों से मोहित हो गये ॥२३॥

मू०-प्रियया सहितः प्रेम्णाहास्यलास्ये मनोदधे ।
रासाजिरे रसावेशात्कारयामास मण्डलीम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—रसावेशात रासाजिरे मण्डलीम् कारयामास प्रेम्णा प्रियया सहितः हास्यलास्ये मनोदधे ॥२४॥

अर्थः—रस के आवेश में आकर रास के आंगन में मण्डलीम् (सखियों के समाज का) मण्डल बना अनुराग में भरकर प्रिया जी के सहित हास्य-लास्य भावों में मन को लगाये ॥२४॥

मू०-रणयन्नूपुरंपादे क्वणयन्कंकणंकरे ।
कलयन्किकिणीं कट्यां वलयान्वादयन् मुहुः ॥ २५ ॥

अन्वयः—पादे नूपुरं रणयत् करे क्वण्यन्कंकणं कट्चां किंकिणीं कलयन् मुहूः वलयान् वादयन् ॥२५॥

अर्थः—पैरों में नूपरों को छमकाते हुए, हाथों में कंकणों को कुनकुनाते हुए, कमर में किंकिणियों को कलकलाते हुए फिर हाथों में छूले कड़े को बजाते हुए ॥२५॥

मू०—नीलपीताम्वरधरौ स्रग्विणौ च शुचिस्मितौ ।
विराजेते महापीठे तुमुले रास मण्डले ॥ २६ ॥

अन्वयः—तुमले रास मण्डले महापीठे नीलपीताम्वरधरौ स्रग्विणौ च शुचिस्मितौ ते विराजे ॥२६॥

अर्थः—तुमुल महारास मण्डल के महामणिमय सिंहासन पर नीले और पीले वस्त्रों को धारण किये हुए फूलों की लम्बी माला पहने हुए मन्द मुस्कराते हुए वे शोभित हो रहे हैं ॥२६॥

मू०—सर्वाः सर्वे प्रनृत्यन्ति नृत्ययन्ति परस्परम् ।
गायन्ति गाययंत्यश्च नन्दतिनदन्यति च ॥ २७ ॥

अन्वयः—सर्वाः सर्वे नृत्यन्ति परस्परम् प्रनृत्ययन्ति च गाययंत्यः गायन्ति च नदयन्ति नदन्ति ॥२७॥

अर्थः—सभी सखियाँ अपने-अपने साथ के रामरूप को नचाती हैं, नाचती हैं, और गवाती हैं, गाती हैं, और खूब आनन्द देती हैं, और आनन्दित होती हैं ॥२७॥

मू०—लोलालकाः परिभ्रान्त्या बेणी श्रेणी भिरंजिताः ।
वंक ताटंक धारिण्यो गंड मण्डल मण्डिताः ॥ २८ ॥

अन्ववः—बेणीश्रेणीभिरंजिताः परिभ्रात्या लोलालकाः बंकताटंक धारिण्यो गंड मण्डल मण्डिताः ॥२८॥

अर्थः—(वे सब सखियाँ) रास मण्डल के मध्य में अपनी-अपनी सिर के चोटियों से सुन्दर शोभिता घूमाती हुई सिर की अलकावलियाँ चंचल हो रही हैं, अर्धचन्द्राकार मणि के ताटंक (कान का भूषण) को धारण की हुई उनके कपोल मण्डल पर सुन्दर भूषित हो रहे हैं ॥२८॥

मू०-ताभिः परमहर्षेण रमते रघुनन्दनः ।
यथापूर्णशशीतारा बेष्टितो भाति निर्मलः ॥ २९ ॥

अन्वयः—रघुनन्दनः ताभि परमहर्षेण रमते यथा तारावेष्टितो निर्मलः पूर्णशशी भाति ॥२९॥

अर्थः—श्री रघुनाथ जी उन सखियों के द्वारा परम हर्ष में भरकर रमण कर रहे हैं। जैसे ताराओं से घिरे हुये निर्मल पूर्ण चन्द्रमा की तरह अनुभव हो रहे हैं ॥२९॥

मू०-एवं प्रियाः प्रयत्नेन प्राप्यरास रसोत्सवं ।
न त्यजन्ति प्रियं कान्तं तथा रंको ललामकम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—एवं राम रास रसोत्सवं प्रयत्नेन प्राप्य प्रियाः प्रियकान्तं यथा रंको ललामकम् न त्यजन्ति ॥३०॥

अर्थः—इस प्रकार श्रीराम जी के रास रस का उत्सव वड़े प्रयत्न के साथ प्राप्त करके सभी प्रियायें जैसे दरिद्र उत्तम रत्न को जिस प्रकार नहीं त्यागता उसी प्रकार प्रियतम कान्त को नहीं छोड़ती हैं ॥३०॥

मू०-भजामि सरयूतीरमाश्रितं रघुनन्दनम् ।
सीता सह महारास रसिकं नटिनं हरिम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—सीता सह महारास रसिकं नटिनं सरयूतीर माश्रितं हरिम् रघुनन्दनं भजामि ॥३१॥

अर्थः—श्री सीता जी के साथ महारास के महारसिक सरयू तीर के (वनों का) आश्रयण लिए हुए भगवान् श्री रघुनाथ जी को मैं भजता हूँ ॥३१॥

मू०-स्मरावेश कलं चित्तं नाट्च गीतोत्सुकं परम् ।
अनन्त सखिभिर्युक्तं रामचन्द्रं भजाम्यहम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—अनन्त सखिभिर्युक्तं नाट्चगीतोत्सुकं परम् स्मरावेष कलंचित्तं अहं रामचन्द्रं भजामि ॥३२॥

अर्थः—अनन्त सखियों के समाज में घिरे हुए नृत्य गान की उत्सुकता से कामावेश में आकुलित चित्त श्रीराम जी को मैं भजता हूँ ॥३२॥

मू०-नर्मप्रियं रसान्नर्मं नर्मवाक् नर्मचातुरम् ।
नर्मप्रियः प्रियायुक्तं भजामि रघुवंशजम् ।। ३३ ।।

अन्वयः—नर्मचातुरम् प्रियायुक्तं नर्मप्रियः नर्मवाक् नर्मप्रियं रसान्नं (खादन) रघुवंशजं भजामि ।।३३।।

अर्थः—नर्मता ही है प्रिय जिनको और नर्म चतुरता पूर्वक नर्म बोलते हुए (प्रिया जू के सहित श्री रघुनाथ जी को) (कोमल अतिप्रिय रसमय अन्न खाते हुए) भजन करता हूँ ।।३३।।

मू०-काचिद्विरह संतप्ता नितांन्तं कांतमुत्तमम् ।
न जहाति प्रियं तेन यथा प्रोषितभर्तृका ।। ३४ ।।

अन्वयः—काचिद्विरह संतप्ता ते न यथाप्रोषितभर्तृका नितांतं उत्तमम् कान्तं प्रियं न जहाति ।।३४।। तथा सा ।

अर्थः—कोई प्रिया प्रियतम के वियोग से संतप्त हुई, जिस प्रकार से परदेशी पति का समागम प्राप्त होने पर नितान्त उत्तम कामनीय प्रियतम को नहीं त्यागती हैं, उसी प्रकार सखियाँ भी प्रियतम को ।।३४।।

मू०-काचिद् दृष्ट्वा प्रियं काभिर्भुक्तं लांछनलांछितम् ।
छद्मना चाटुवाक्येन खंडिते वाचरत्य हो ।। ३५ ।।

अन्वयः—काभिर्भुक्तं (अतएव) लांछन लांछितम् प्रियं दृष्ट्वा छद्मनां चाटुवाक्येन अहो खंडिता इव आचरति ।।३४।।

अर्थः—किसी सखी के द्वारा भोगे हुये, अतएव भोग के चिन्हों से चिन्हित अपने प्रियतम को देखकर छलमय चाटुवाक्य बोलती हुयी आश्चर्य है, खंडिता नायिका सी आचरण करती है ।।३५।।

मू०-काचित्प्रियं प्रणमति प्रागुक्त्वा चाप्रियं ह्लिया ।
पुनः प्रसन्नाय सतीकलहान्तरिता यथा ।। ३६ ।।

अन्वयः—काचित् यथा कलहान्तरिता सती पुनः प्रसन्नाय ह्लिया च अप्रियं प्रागुक्त्वा च प्रियं प्रणमति ।।३६।।

अर्थः—कोई जैसे प्रियतम से कलह करने वाली हो, इस प्रकार होते हुए भी फिर प्रियतम को प्रसन्न करने के लिए लजाती हुई पहले अप्रिय शब्द कह करके फिर प्रियतम को प्रणाम करती है ।।३६।।

मू०–काचित्संकेत कुंजांतर्गता तत्र न पश्यति ।
प्रियं सख्यं भर्त्सतिस्म विप्रलब्धेव भामिनी ।। ३७ ।।

अन्वय:—काचित् भामिनी संकेत् कुंजांतर्गता प्रियं सख्यं न पश्यति विप्रलब्धेव भर्त्सतिस्म ।।३७।।

अर्थ:—कोई प्रकाशवती सखि एक कुन्ज से सांकेतिक दूसरे कुन्ज में गई तो वहाँ प्रिय सखा को न देखकर विप्रलब्ध स्त्री की तरह डांटने फटकारने लगी ।।३७।।

मू०–काचित्कुन्जगता बाला तत्रा दृष्ट्वा प्रियं स्वकम् ।
विरहानल तप्तांगा भवत्युत्कण्ठिता यथा ।। ३८ ।।

अन्वय:—काचित् बाला कुन्जगता तत्र स्वकम् प्रियं अदृष्ट्वा यथा उत्कण्ठिता विरहानल तप्तांगा भवति ।।३८।।

अर्थ:—कोई बाला सखि अपने कुन्ज में गयी, वहाँ अपने प्रियतम को नहीं देखी, तो जैसे उत्कण्ठिता स्त्री हो इस प्रकार विरहाग्नि से संतप्त अंग वाली हो गयी ।।३८।।

मू०–काचित्मालां ग्रंथयती गायंति प्रियचेष्ठितं ।
पुष्पशय्यां सज्जयति यथा वासक सज्जिका ।। ३९ ।।

अन्वय:—काचित्मालां ग्रंथयती यथा वासक सज्जिका यथा प्रिय चेष्टितं गायन्ती पुष्पशय्यां सज्जयति ।।३९।।

अर्थ:—कोई बाला माला गूँथती हुई जिस प्रकार वासक सज्जिका स्त्री होती हैं, उस प्रकार प्रियतम की चेष्टाओं के गीत गाती हुई फूलों की शय्या सजा रही हैं ।।३९।।

मू०–काचित् प्रियं न त्यजतिक्षणमात्रमुर: स्थलात् ।
प्राणात्परमसंगोप्यं यथास्वाधीन भर्तृका ।। ४० ।।

अन्वय:—काचित् प्राणात्परम संगोप्यं प्रियं उरस्थलात् क्षणमात्रं यथा स्वाधीन भर्तृका न त्यजति ।।४०।।

अर्थ:—कोई प्रिया प्राणों से भी अधिक परम अनुराग में छिपाये हुए प्रियतम को अपने उरस्थल से जैसे स्वाधीनभर्तृका (नायिका का गुण है) इस तरह से नहीं त्यागती हैं ।।४०।।

मू०-काचित्कांतार्थिनीकांतमुदिश्य गच्छतिद्रुतम् ।
कुन्जात्कुन्जं प्रविशति यथाभिसारिका मुदा ।।४१।।

अन्वय:—काचित् कान्तार्थिनी कान्तं उद्दिश्य मुदा कुन्जात् कुन्जं द्रुतं प्रविशति यथाभिसारिका गच्छति ।।४१।।

अर्थ.—कोई कान्त की चाहना वाली प्रिया कान्त को खोजती हुई आनन्द पूर्वक एक कुन्ज से दूसरे कुन्ज में शीघ्रतापूर्वक बैठती है, जैसे अभिसारिका (नायिका का गुण है) चलती है ।।४१।।

मू०-काचिन्मानवती बालां प्रणयेन वशीकृता ।
प्रयत्नश्च इत्याह वाचयंश्चाटुवाक्यतः ।। ४२ ।।

अन्वय:—काचित् प्रयत्नः चाटुकवाक्यतः मानवतीवालां प्रणयेन वशीकृता वाचयनः इत्याह ।।४२।।

अर्थः—कोई सखी बड़े परिश्रम से और चुटकीले बचनों से किसी मानवती वाला को प्रणय प्रेम के अधीन करके बोलती हुई इस प्रकार कही ।।४२।।

मू०-हावभाव प्रभावज्ञा रामाग्रे कापिसस्मित ।
गानयुक्तैर्महावाद्यैस्तोषिता रासमण्डले ।। ४३ ।।

अन्वय:—कापि हाव-भाव प्रभावज्ञा गानयुक्तैर्महावाद्यैः रासमण्डले तोषिता रामाग्रे सस्मिता ।।४३।।

अर्थः—कोई, हाव-भाव के प्रभाव को समझने वाली, गान युक्त महावाद्यों के द्वारा रास मण्डल में संतुष्ट की हुई श्री रघुनाथ जी के आगे मुस्करा रही है ।।४३।।

मू०-काचिच्चामर हस्ता च काचिद्व्यजन हस्तकाः ।
सुगंधमाल्य हस्ता च स्थिता कमल हस्तका ।। ४४ ।।

अन्वय:—काचिच्चामरहस्ता च काचिद्व्यजन हस्तकाः च सुगन्ध माल्य हस्ता कमल हस्तकाः स्थिता ।।४४।।

अर्थः—कोई सखि चामर को हाथ ली हुई, और कोई सखि पंखा हाथ में ली हुई, और कोई सखि सुगन्धित फूल माला हाथ में ली हुई, और कोई सुन्दर हाथ में सुन्दर कमल लेकर खड़ी हैं ।।४४।।

मू०-स्वर्णाधारे जलंकाश्चित्कृत्वा कौतूहलान्विताः।

मिष्टान्नैश्च समायुक्तं काश्चित्कांचन भाजनम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—काश्चित् स्वर्णाधारे जलं च काश्चित् कांचन भाजनं मिष्टान्नैः समायुक्तं कृत्वा कौतूहलान्विताः ॥४५॥

अर्थः—कोई सोने के झारी में जल लेकर, और कोई सोने के थाली में मिष्ठानों को भरकर कौतूहल युक्त हो रही हैं ॥४५॥

मू०-काचिद् घटं करे धृत्वा पूर्णमैरेयकं रहः।

अव्यग्राग्रे प्रेमयुताददृशे राघवं मुदा ॥ ४६ ॥

अन्वयः—काचित् पूर्णमैरेयकम् घटं करे धृत्वा मुदा रहः अव्यग्र प्रेम-युता अग्रे राघवं ददृशे ॥४६॥

अर्थः—कोई मैरेय से भरा हुआ घड़ा हाथ में लेकर, आनन्द में भरी हुई प्रातः काल अव्यग्रचित्त होकर प्रेम से भरी हुई आगे श्री राघव जी को देखने लगी ॥४६॥

मू०-सितातपत्रं काश्चित्तु धृत्वातांवूलमुत्तम्।

कुंकुमागर कस्तुरी चंदनाद्यैः प्रपूरितम् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—काश्चित् सितात पत्रं तु कुम्कुमागर कस्तुरी चन्दनाद्यैः प्रपूरितं उत्तमं ताम्बूलं धृत्वा ॥४७॥

अर्थः—कोई सखि छत्र और कुंकुम, अग्र, कस्तूरी, चन्दनादि से परिपूर्ण ताम्बूल को हाथ में लेकर ॥४७॥

मू०-कांदोरकं धृताश्चान्या रामसेवा परायणाः।

नानायंत्र कराः काश्चिदिंगितज्ञा मनोरमाः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—अन्याः कांदोरकं धृता च रामसेवा परायणाः काश्चित् नानायंत्रकराः मनोरमाः इंगिताः ॥४८॥

अर्थः—कोई वक्ष स्थलों से शोभित श्री राम सेवा में परायण हैं, कोई अन्या विविध प्रकार के बाजाओं को हाथ में ली हुई हैं, ये सब इशारों को समझने वाली मन रमणीया हैं ॥४८॥

मू०-सेवंत्योहर रहः प्रीत्याः ससीतं रघुनन्दम् ।
रासेश्वरं निरीक्षन्ति सद्भक्तया भक्तवत्सलम् ॥४६॥

अन्वयः—भक्तवत्सलं रासेश्वरं ससीतं रघुनन्दनं सद्भक्तया प्रीत्याः अहररहः सेवन्त्यः निरीक्षन्ति ॥४६॥

अर्थः—भक्त वत्सल रामेश्वर श्री सीता जी के सहित रघुनाथ जी की, बड़े सुन्दर अनुराग से, सुन्दर भक्तिपूर्वक रात-दिन सेवा करती हुई देखती हैं ॥४६॥ इसके आगे श्री हनुमान जी अपने मन को कहते हैं, कि हे मन श्री सीताराम जी के रास जल समुद्र में स्नान करो ।

मू०-रासार्णवे सुखजले चारुप्रेमतरंगैरंकिते ।
स्त्रीरत्नानां हेतोर्मज्जमनो रामचन्द्रस्य रासे ॥५०॥

अन्वयः—चारुप्रेमतरंकिते रासार्णवे सुख जले स्त्रीरत्नानां हेतोः रामचन्द्रस्य रासे ममज्ज ॥५०॥

अर्थः—सुन्दर प्रेम के तरंगों से लहरित रास समुद्र के सुख जल में स्त्रियाँ रूपी रत्नों (के परम प्रिय) श्री रामचन्द्र जी के रास में हे मेरा मन, मज्जन करो, (अवगाहन करो) ॥५०॥

मू०-सरसनिकासे प्रेमजलैः परिपूर्ण स्वर्णांग्याः ।
विकसितानन कमलं पिवति यत्र मधुव्रतो रामः ॥५१॥

अन्वयः—स्वर्णांग्याः प्रेमजलैः परिपूर्णे सरसनिकासे यत्र रामः मधुव्रतः विकसित आनन कमलं पिवति ॥५१॥

अर्थः—प्रकाशमान सोने के समान अंग वालियों के अनुराग जल से भरा हुआ रासलीला रस निकलने के स्थान में श्रीराम जी जहाँ पर भ्रमर वन खिले हुए मुख कमलों का रस पी रहे हैं ॥५१॥

मू०-रामोरसिक शशिवदनी विलशत्पतिरातश्रांत चेतावै ।
दलितां जनचय सदने तत्र किमुनिरंजनो विभातिस्म ॥५२॥

अन्वयः—पतिरति श्रान्तचेता दलितां जनचय सदने शशिवदनी रसिक रामो वै तत्र किमुनिरंजन विभाति स्म ॥५२॥

अर्थः—पति के साथ विलास से श्रमिता जिनका आँख, का अंजन समूह

विचलित हो गया, ऐसे महल में चन्द्रमुखियों के रसिक राम जी विलास करते हुए वहाँ पर क्या निरंजन अनुभव हो रहे हैं ॥५२॥

मू०-विलसदलस नेत्रां रामगात्रानुरक्तां सुरुचिमुख पद्मेस्वेदविन्दू-दधानां। शिथिल कुचकच श्रीं विभ्रतीं भ्राजमानां नमति जनक-पुत्रीं प्रेमसंवर्द्धनींताम् ॥५३॥

अन्वयः—विलसत् अलस नेत्रां सुरुचिमुखपद्मे स्वेदविंदूदधानां शिथिल कुचकच श्रीं विभ्रतीं भ्राजमानां प्रेम सम्वर्द्धनीं, तां रामगात्रानुरक्तां जनक पुत्रीं नमति ॥५३॥

अर्थः—विलासमय अलसाये हुए सुन्दर नेत्र वाली, सुन्दर मन रमणीय मुख कमल में पसीने के बिन्दुओं को धारण की हुई, शिथिल वक्ष स्थल और केशलशे वाली, शोभा को धारण की हुई, प्रकाशवती, उन प्रियतम के अनुराग को बढ़ाने वाली श्री जनक पुत्री को कोई नमस्कार कर रही हैं ॥५३॥

मू०-अमल कमल नेत्रं जानकी प्रेमपात्रं सजल जलद गात्रं पीतवस्त्रं दधानम्। उरसिवनजमालं कौस्तुभा सक्तकंठं स्मितरुचिर विकासं रामचन्द्रं भजेऽहम् ॥५४॥

अन्वयः- अहं अमलकमल नेत्रं जानकी प्रेमपात्रं सजल जलद गात्रं पीतवस्त्रं दधानं उरसिवनजमालं कौस्तुभा सक्तकण्ठं स्मितरुचिर विकासं रामचद्रं भजे ॥५४॥

अर्थः—मैं (नाम हनुमान वक्ता) निर्मल कमल के समान नेत्र वाले श्री जानकी जी के अतिसय प्रेम पात्र, जल भरे हुए मेघ के समान श्री विग्रह में पीला वस्त्र धारण किये हुए, कण्ठ में कौस्तुभमणि धारण किये हुए सुन्दर मन्द मुस्क्यान का प्रकाश (विकास) करने वाले श्री रामचन्द्र जी को भजता हूँ ॥५४॥

इति श्रीमद्हनुमत्संहितायां परम रहस्ये महारासोत्सवे
श्रीहनुमदग्रस्त संवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

श्रीसीताराम रहस्य रसराजैकनिष्ठ दिनमणि आचार्य प्रवर अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्रीअग्रदेवाचार्य वंशावतंस श्रीस्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणार-विन्द मकरन्द रसलम्पट श्री जानकी शरण जी महाराज (मधुकर) द्वारा "श्रीहनुमत्संहिता" श्रीसीतारामरहस्य प्रकाशिका टीका चतुर्थोऽध्यायः।

ॐ अथ पंचमोऽध्याय: ॐ

श्री अगस्त्य उवाच—

मू०—तवाननाद्वाक्य प्रभव प्रभाकरात्प्रफुल्लितं मद्हृदयं सरोरूहम् ।
सीतासखीभि: सहयत्र सांम्प्रतं मिलिदंवन्नंदति रामभद्र: ।।१।।

अन्वय:—यत्र तवाननाद्वाक्य प्रभव प्रभाकरात् मत्हृदयं सरोरूहं प्रफुल्लितं रामभद्र: सांप्रतं यत्र सीतासखीभि: सह च मिलिदवत् रामभद्रोऽपि नंदति।।१।।

अर्थ:—श्री अगस्त जी बोले हे श्री हनुमान जी ! आप के श्री मुख वाणी से उत्पन्न सूर्य किरणों से मेरा हृदय कमल खिल गया है। श्री रामचन्द्र जी इस समय जहाँ श्री सीता जी के सखी समाज के साथ भ्रमर की तरह से आनन्दित हो रहे हैं ।।११।। इसके बाद श्री हनुमान जी बोले—

श्री हनुमानुवाच—

मू०—श्रान्तं कान्ताननं कान्तं स्वेदेन परिपूरितं दृष्ट्वा राम: ।
प्रहृष्टात्मा मज्जनाय मनोदधे ।। २ ।।

अन्वय:—राम: कांतं कान्ताननं स्वेदेन परिपूरितं श्रान्तं दृष्ट्वा प्रहृष्टात्मा मज्जनाय मनोदधे ।।२।।

अर्थ:—श्री हनुमान जी बोले-श्रीराम जी अपने प्रकाशमान प्रिया जू के मुख को पसीने से परिपूर्ण (तरवतर) श्रमित देख कर प्रसन्न होकर श्री सरयू जी में स्नान करने के लिए मन बढ़ाये ।।२।।

मू०—ता: सर्वा प्रमुदितास्तत्र भगवन्तं रघुत्तमम् ।
नाना भरण सम्पन्ना वेष्टितास्नान चेतस: ।। ३ ।।

अन्वय:—तत्र स्नान चेतस: भगवन्तं रघुत्तमं नानाभरण सम्पन्ना ता: सर्वा: वेष्टिता प्रमुदिता: ।।३।।

अर्थ:—स्नान करने की चाहना वाले भगवान् श्री रामचन्द्र जी को नाना प्रकार के बस्त्राभूषणों से सम्पन्न, वे सब सखियाँ आनन्दित हो करके घेर लिये ।। ३ ।।

मू०—नृत्यवाद्यै: सुमधुरैराकीर्णं छत्र चामरै: ।
गच्छन्तौ भासमानौ हंसकुंजरगामिनौ ।। ४ ।।

अन्वयः—तौ हंसकुञ्जर गामिनौ सुमुधुरै नृत्यवाद्यै राकीर्णं छत्र चामरैः गच्छन्तं भासमानौ ॥४॥

अर्थः—दोनों सरकार (श्री सीताराम जू) हँस और हाथी की चाल से चलने वाले सुमधुर नृत्य गान वाद्यों से छत्र चामर से सुशोभित धीरे चलते प्रकाशमान हो रहे हैं ॥४॥

मू०—प्राप्तौ तौ सलिलाभ्या सन्तरंगैरूप शोभितम् ।
गन्धवन्तं श्रियाजुष्टं काम सन्दीपकारकम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—तरंगैरूप शोभितं गन्धवन्तं श्रियाजुष्टं कामसंदीप कारकम् सलिलाभ्यासं तौ प्राप्तौ ॥५॥

अर्थः—तरंगों से लहराती हुई शोभायमान सुगन्धित शोभा से युक्त काम को उद्दीप्त करने वाली सरयू धारा के किनारे वे दोनों सरकार प्राप्त हो गये ॥५॥

मू०—सरयूस्तं प्रियं दृष्ट्वा जानक्यालिंगितं विभुं ।
शीतलेन सुगन्धेन जलेन पदपङ्कजम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—सरयूः जानक्यालिंगितं प्रभुं तं प्रियं दृष्ट्वा शीतलेन सुगंधेन जलेन पदपंकजं प्रक्षालिवती ॥६॥

अर्थः—श्री सरयू जी श्री जानकी जी को आलिंगन किये हुए प्रभु उन प्रीतम श्रीराम जी को देख कर शीतल, सुगंधित जल से चरण प्रछालन किया ॥६॥

मू०—पूजयित्वा प्रसूनेन जलजेन प्रपूज्यवै ।
नानोपचारेर्नैवेद्यैः पूजयामास सा सती ॥ ७ ॥

अन्वयः—सा सती प्रसूनेन पूजयित्वा जलजेन (मुक्तामणि प्रवालेऽपि) प्रपूज्यवै नानोपचारै र्नैवेद्यैश्च पूजयामास ॥७॥

अर्थः—उन सती प्रतिव्रता ने परम प्रियतम को सुमनों से पूजकर विशेष रूप से मणि मुक्ताप्रवालों से पूजकर नाना उपचारों नैवेद्यादिकों से प्रेम पूर्वक पूजन किया ॥७॥

मू०—ततः परमहर्षेण जानक्या सह राघवः ।
क्रीड्यन् वारि मध्ये च यथा मत्तमतंगजः ॥ ८ ॥

अन्वयः—ततः जानक्या सहराघवः परमहर्षेण वारिमध्ये क्रीडयत् च यथा मत्तः मतंगजः ॥८॥

अर्थः—उसके बाद श्री जानकी जी के साथ श्री राघव जी परम हर्ष में भर करके जल के मध्य में बिहार करते हुए जैसा मत्तवाला हाथी होता है वैसे हो गये ॥ ८ ॥

मू०—सखीभिः सहितोभाति भगवान्सर्बकामदः ।

काचित्करे करं धृत्वा ह्यागाधे प्रक्षिपन्मुदा ।। ९ ।।

अन्वयः—सर्वकामदः भगवान् मुदाकरे काचित् करंधृत्वा ह्यागाधे प्रक्षिपन् सखीभिः सहतोभाति ॥९॥

अर्थः—सभी कामनाओं को सम्पूर्ण रूप से देने वाले भगवान् श्रीराम जी आनन्द में भरकर अपने हाथों से किसी सखि का हाथ पकड़ करके अगाध जल में फेंकते हुए सब सखियों के साथ शोभित हो रहे हैं ॥९॥

मू०—काचिच्चकैतवतया रामांगे निपतत्य हो ।

काचित्तीरात् प्रपतति जले काचिन्निमज्जति ।।१०।।

अन्वयः—अहो काचिच्चकैतवतया रामांगे निपतति काचित्तोरात् प्रपतति काचित् जले निमज्जयति ॥१०॥

अर्थः—आश्चर्य है कोई सखि ठगपना से श्रीराम जी के अग पर (ऊँचे से) कूद पड़ती है । कोई किनारे पर से गिर पड़ती है, कोई जल में डूब कर श्री रघुनाथ जी को डुबाती है ॥१०॥

मू०—यन्त्रिताबाहुयन्त्रेण काचित्कमल लोचना ।

काचित् सिंजयन्ती करमुक्तेन बारिणा ।। ११ ।।

अन्वयः—काचित् कमल लोचनाबाहुयंत्रेण यंत्रिता काचित् कर मुक्तेन वारिणा सिंजयंती ॥११॥

अर्थः—कोई कमल लोचना सखि प्रीतम के दोनों भुजाओं से बँधी हुई हैं, कोई दोनों हाथों से जल को उछाल कर प्रियतम् (श्रीराम जी) को सींचती हैं ॥ ११ ॥

मू०-परस्परं जलकणान् सिंजयन्ति वरांगणा ।
काचिज्जलं करपादैस्ताडयन्ति मुहुर्मुहुः ॥ १२ ॥

अन्वयः—काचित्वरांगणा परस्परं जलकणान सिंजयंति काचित् मुहुर्मुहुः कर पादैः जलं ताडयन्ति ॥१२॥

अर्थः—कोई सुन्दर श्री विग्रह वाली सखि एक दूसरे को जल के कणों से सींचती है कोई हाथ पैरों से बार-बार जल को पीटती है ॥१२॥

मू०-महान्शब्दो भवत्तत्र समुद्रमथने यथा ।
काचित्सन्तारयन्प्रेम्णा काचिच्चोरस्य कारयत् ॥१३॥

अर्थः—काचित्प्रेम्णा संतारयन् काचित् उरस्यकारयत् तत्र यथा समुद्र मथने महान्शब्दोऽभवत् ॥१३॥

अर्थः—कोई अनुराग में भर करके तैरती हुई, कोई हृदय से हृदय लगाई है, इस प्रकार वहाँ पर जैसे समुद्र मंथन से महान शब्द होता है, ऐसा हो रहा है ॥ १३ ॥

मू०-निपत्य च महागाधे प्रहस्य रघुनन्दनः ।
काचित्मग्नभयात्कान्तं गाढमालिङ्गनं ददौ ॥ १४ ॥

अन्वयः—काचित्मग्नभयातकांतं गाढमालिगनं ददौ च प्रहस्य रघुनन्दनः महागाधे निपत्य (क्रीड़्यति) ॥१४॥

अर्थः—कोई डूबने के भय से प्रीतम को गाढ़ आलिगन देती है और श्री रघुनाथ जी हँस करके महाअगाध जल में कूद कर खेलने लगे ॥१४॥

मू०-काचित्प्रवाह पतिता तरंगैर्वारितां शुका ।
ह्रियानायाति निकटं सङ्कटं बहुमन्यते ॥ १५ ॥

अन्वयः—काचित् तरंगैर्वारितांशुका प्रवाह पतिता संकटं बहुमन्यते ह्रियानिकटं न याति ॥१५॥

अर्थः—कोई सखि जल तरंगों से बही हुई कपड़ा वाली जल प्रवाह में गिर पड़ी संकट बहुत मानती है, परन्तु लज्जा के मारे (कारण) समीप नहीं आती है ॥ १५ ॥

मू०-तां तु काचित्करेधृत्वा चानीता राघवान्तिके ।
लज्जयाधोमुखी भूत्वा निमज्जति जलेऽमले ।। १६ ।।

अन्वयः—तां तु काचित्करेधृत्वा राघवांतिके चानीता लज्जयाधोमुखी भूत्वा अमले जले निमज्जति ॥१६॥

अर्थः—उस सखि को हाथ पकड़ करके कोई सखि श्री रघुनाथ जी के समीप लाई तो लज्जा के मारे नीचे मुख करके निर्मल जल में डूब गई ॥१६॥

मू०-चिबुकेद्वांगुलिं दत्वा गण्डं गण्डे नियुज्यताः ।
यथा कमल वक्रान्ते चञ्चरीकाश्चुचुम्बिरे ।। १७ ।।

अन्वयः—गंडं गंडे नियुज्यताः (काश्चित्) यथा कमलवक्रान्ते चंचरीकाः चिबुके वांगुलिं दत्वा चुचुम्बिरे ॥१७॥

अर्थः—कपोल पर कपोल सटा करके कोई सखी जिस प्रकार कमल के मुख में भौंरा इस प्रकार चिबुक में दो अंगुली देकर चूमने लगी ॥१७॥

मू०-सुश्नातावारिभिः लिकन्नानीरहा विवृतानता ।
रुक्मांगी सूक्ष्मवसना नग्नामग्ना जले पुनः ।। १८ ।।

अन्वयः—सुश्नातावारिभिः लिकन्नानीरहा विवृतानता रुक्मांगी सूक्ष्मवसना नग्ना पुनः जले मग्ना ॥१८॥

अर्थः—(कोई सखि) सुन्दर तरह से स्नान करके जल से भींजी हुई शरीर से जल बहता हुआ (कपड़ा शरीर में चिपक जाने के कारण से) लज्जा के मारे झुकी हुई सोने के समान गौर वर्ण वाली झिना वस्त्र पहनी हुई नग्न सदृश दिखाई पड़ने से पुनः जल में डूब गयी ॥१८॥

मू०-एवं नानाविधानेन क्रीडयित्वा पुनः पुनः ।
उत्तस्थौतीरमतुलं ताभिः सहविलासकृत ।। १६ ।।

अन्वयः—एवं नानाविधानेन ताभिः सह विलासकृत पुनः पुनः क्रीड्यित्वा अतुलं वीरं उत्तस्थो ॥१६॥

अर्थः—इस प्रकार नाना बिधानों से उन नायिकाओं के साथ विलास करते हुए फिर-फिर क्रीड़ा (कौतुक) करते हुए उत्तम घाट के किनारे उतर आये ॥१६॥

मू०-सर्वाभिरलिभिस्तत्र चाभाति जयशब्दकम् ।
ततो मंजुलकं कुञ्जं प्रविश्य परमाद्‌भुतम् ।। २० ।।

अन्वयः - ततो परमाद्भुतं मंजुलकं कुञ्जं सर्वाभिरलिभिः प्रविश्य च तत्र जयशब्दकम् अभाति ।।२०।।

अर्थः—इसके बाद परम अद्‌भुत सुन्दर कुञ्ज में सब सखियों के साथ (प्रीतम) प्रवेश किये तो उस कुञ्ज के भीतर जय शब्द से सुन्दर गुञ्ज हुआ ।।२०।।

मू०-ततस्तु सुखदं धाम गमनेच्छु रघुत्तमः ।
हास्यलास्य विनोदेन प्राप्य स्थानमनुत्तमम् ।। २१ ।।

अन्वयः—हास्यलास्य विनोदेन अनुत्तमं स्थानं प्राप्य ततः रघुत्तमः सुखदं धाम गमनेच्छु ।।२१।।

अर्थः हाव-भाव विनोदमयी चेष्टाओं से सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त करके तब (इसके बाद) रघुनाथ जी सुखमय महल में जाने की इच्छा किये ।।२१।।

मू०-सुरागमुले विमले मण्डपे मणि मण्डिते ।
तोरणैर्हेम कलशैर्मणिस्तभै विराजिते ।। २२ ।।

अन्वयः—सुरागमूले तोरणैर्हेम कलशैर्मणिस्तम्भै विमले मणिमण्डिते विराजिते ।।२२।।

अर्थः—कल्प वृक्ष के नीचे स्वर्णमयी तोरण, कलश, मणिमय खम्भाओं से रचना युक्त निर्मल मणिमय मण्डप में विराजे ।।२२।।

मू०-राकायास्तरणे दिब्ये विस्तीर्णे परमासने ।
तत्रसिंहासनं कान्तं नानामणिभिरावृतं ।। २३ ।।

अन्वयः—विस्तीर्णे राकायास्तरणे दिब्ये परमासने तत्र नानामणिभिरावृतं कान्तं सिंहासनं ।।२३।।

अर्थः– विस्तार युक्त चन्द्रकान्त मणि के दिव्य बिछावन में वहाँ पर नाना मणियों से घिरा हुआ रचनायुक्त सिंहासन है ।।२३।।

मू०-तन्मध्ये षोडशदलं परमज्योतिर्मयं परम् ।
न्यवसद्राघवस्तत्र सीतया सहसुवृतः ।। २४ ।।

अन्वय:—तन्मध्ये परम ज्योतिर्मयं षोडशदलं तत्र परम सुवृत: सीतया सह राघव: निवसति ॥२४॥

अर्थ:-उस सिंहासन के बीच में परम ज्योतिर्मय सोलहदल के कमल हैं, उस कमल में (सखियों के परम समाज से घिरे हुए) श्री सीता जी के सहित श्रीराम जी बैठे हैं ॥२४॥

मू०-तत्रकुञ्जान्यनेकानि फुल्लितानिह सर्वत: ।
पंक्षिसंघश्च निनदैर्नादितानि मनोहरै: ॥ २५ ॥

अन्वय:—तत्र सर्वत: फुल्लितानि अनेकानि कुञ्जानि इह मनोहरै: पक्षिसंघ: निनदैर्नादितानि ॥२५॥

अर्थ:—वहाँ पर चारों तरफ खिले हुए फूल वाले अनेक कुञ्ज हैं। इस स्थान में मनोहर पक्षियों के समूह का नाद गुञ्जित हो रहा है ॥२५॥

मू०-बसन्ताद्यर्तवोयत्र फल पुष्प समन्विता: ।
नवपल्लव नम्राग्रा भ्रमद्भ्रमर वेष्टिता: ॥ २६ ॥

अन्वय:—यत्र वसन्तादि रितव: नवपल्लव नम्राग्राभ्रमद्भ्रमर बेष्टिता फलपुष्प समन्विता: [लतातरव: सन्ति] ॥२६॥

अर्थ:—जहाँ पर बसन्तादि सभी ऋतुयें हैं, नवीन पल्लवों में घूमते हुए भ्रमर झुण्ड के झुण्ड घेरे हुए हैं वैसे फल पुष्पों से युक्त बृक्ष लतायें हैं ॥२६॥

मू०-बहन्तिबाता पद्मानि सुखस्पर्श मनोरमा: ।
कामदा कामनीनां च मनोहलादकरा: परा: ॥ २७ ॥

अन्वय:—कामनीनां कामदा परा: मनोह्लादकरा: च सुखस्पर्श मनोरमा: पद्मानि वाता वहन्ति ॥२७॥

अर्थ:—कामिनियों के सभी कामनाओं के पूर्ण करने वाली परम मन को आह्लाद करने वाली मन रमणीय सुख स्पर्श वाली कमलों की हवा बह रही हैं ॥२७॥

मू०-तत्पद्मेषोड्शदले वयस्या: सन्तिसोत्सुका: ।
क्रमेणतासां नामानि श्रूयतां मुनिसत्तम ॥ २८ ॥

अन्वयः—तत् षोडशदले पद्मे सोत्सुकाः बयस्याः सन्ति हे मुनिसत्तम् क्रमेण तासां नामानि श्रूयतां ॥२८॥

अर्थः—उस सोलह दल के कमल में दल-दल प्रति बड़े उत्सुकता में समान उम्र वाली सखियाँ हैं। हे मुनि श्रेष्ठ श्री अगस्त जी मैं उन सखियों के नामों को क्रमशः कहता हूँ सुनिये ॥२८॥

मू०-उज्जलाकाञ्चनी चित्रा चित्र रेखा सुधामुखी ।
हंस प्रसंसी कमला विशदाक्षी सुदंशका ॥ २९ ॥

मू०-चन्द्रानना चन्द्रकला माधुर्य्या शालिनी वरा ।
कर्पुरांगी वरारोहा इत्याद्या षोड्शः स्मृता ॥ ३० ॥

अर्थः—१-उज्जला २-कांचनी ३-चित्रा ४-चित्र रेखा ५-सुधामुखी ६-हँसी ७-प्रसंसी ८-कमला ९-विशदाक्षी १०-सुदंशका ११-चन्द्रानना १२-चन्द्रकला १३-माधुर्यशालिनी १४-वरा १५-कर्पुरांगी १६-वरारोहा इस प्रकार से आदि अन्त तक सोलह गिनी गई है ॥२९,३०॥

मू०-तस्य पद्मस्योपदले राजन्ते षोड्शाङ्गनाः ।
श्रृणुनामानि तासां वै महामुनिवरेश्वर ॥ ३१ ॥

अन्वयः—तस्य पद्मस्य उपदले षोड्शाङ्गना राजन्ते हे महामुनेश्वर वै तासां नामानि श्रृणु ॥३१॥

अर्थः – उस कमल के सोलह उपदलों में सोलह सखियाँ इस प्रकार रहती हैं हे महामुनिवरों के स्वामी श्री अगस्त जी निश्चय करके आप उन सोलहों के नामों को सुनिये ॥३१॥

मू०-शोभना शुभदा शान्ता संतोषा सुखदा सती ।
चारुस्मिता चारुरूपा चार्वंगी चारुलोचनाः ॥ ३२ ॥
हेमा क्षेमा क्षेमदात्री धात्री धीरा धरास्मृता ।
अनेक सेवाभिरता सेवन्ते निशिमुत्तमाः ॥ ३३ ॥

अर्थः—१-शोभना २-शुभदा ३-शान्ता ४-सन्तोषा ५-सुखदा ६-सती ७-चारुस्मिता ८-चारुरूपा ९-चार्वाङ्गी १०-चारुलोचना ११-हेमा १२-क्षेमा

१३-क्षेमदात्री १४-धात्री १५-धीरा १६-धरास्मृता । अनेक उत्तम स्त्रियों में अनेक प्रकार की सेवा में आसक्त होकर सेवा करती हैं ॥३२,३३॥ इसके बाद कमल के बारह दल वाले आवरण में रहने वाली सखियों का नाम क्रमशः कहते हैं—

मू०-क्षीरोद्भवाभद्ररूपा भद्रदाभामवर्जिता ।
विद्युल्लता पद्मनेत्रा पावनी हंस गामिनी ॥ ३४ ॥
रमणीया प्रेमदात्री कुंकुमांगी रसोत्सुकाः ।
एतासख्यो वसन्त्यत्र दलेषु द्वादशेषु च ॥ ३५ ॥

अर्थः—१-क्षीरोद्भवा २-भद्ररूपा ३-भद्रदा ४-भामवर्जिता ५-विद्युल्लता ६-पद्मनेत्रा ७-पावनी ८-हंसगामिनी ९-रमणीया १०-प्रेमदात्री ११-कुंकुमांगी १२-रसोत्सुका, ये सब सखियाँ इस बारह दल वाले आवरण में रहती हैं ॥३४,३५॥ इसके आगे बारह उपदलों के रहने वाली सखियों के नाम कहते हैं ।

मू०-महार्हामाधवी माल्या कामदा काम मोहिनी ।
रतीक्षती नितिवती प्रेमदा कुशला कला ॥ ३६ ॥
लीलाद्यायाश्चोपदले सेवन्ते रघुनन्दनम् ।
दृश्यन्ते च महाप्रेम मग्नाकौतूहलान्विताः ॥ ३७ ॥

अर्थः—१-महार्हा २ माधवी ३-माल्या ४-कामदा ५-काम मोहिनी ६-रतीक्षती ७-नितिवती ८-प्रेमदा ९-कुशला १०-कला ११-लीला १२-लीलावती (आदि शब्द से लीलावती है) ये बारह सखियाँ, बारह उपदल वाले आवरण में रहने वाली हैं, जो श्री रघुनाथ जी की सेवा करती हैं । इन बारहों को महाप्रेम में मग्न हुई महाकौतूहल वाली देखी जाती हैं ॥३६,३७॥ इसके आगे अष्टकुञ्ज का वर्णन है—

मू०-ततोष्टदल मध्ये च नानासौभाग्य संयुते ।
कुंजाधिष्ठात्री सख्यस्तानृत्य सेवन तत्पराः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—च ततोऽष्ट दल मध्ये नाना सौभाग्य संयुते नृत्यसेवन तत्पराः ताः कुञ्जाधिष्ठात्री सख्यः ॥३८॥

अर्थः—और उस बारह दल के आगे अष्टदल वाले आवरण के मध्य नाना प्रकार के सौभाग्यों से युक्त जो नृत्यादि सेवाओं में सावधान हैं, उन अष्टकुञ्ज की अधिष्ठात्री सखियों का नाम आगे कहते हैं ॥३८॥

मू०-प्रथमवेष कुञ्जं तौ प्रविष्टौ मर्मभिर्वृतौ ।
विलासिनी सखी तत्र दृष्ट्वा रासेश्वरौ मुदा ॥ ३९ ॥

अन्वयः—प्रथमं तौ नर्मभिर्वृतौ बेष कुञ्जौ प्रविष्टौ तत्र विलासिनी सखी रासेश्वरौ मुदा दृष्ट्वा ॥३९॥

अर्थः—सबसे पहले युगल सरकार सखियों के नर्मलीलाओं के आनन्द से घिरे हुए शृंगार कुञ्ज में प्रवेश किये । उस कुञ्ज की प्रधान सखी विलासनी जी ने दोनों रासेश्वर को आनन्दमयी दृष्टि से देखा तो ॥३९॥

मू०-बेषंचकार शीघ्रं सा वस्त्रालङ्कार माल्यकैः ।
उभयोर्वरदम्पत्योरनुरूपं सुभक्तितः ॥ ४० ॥

अन्वयः—सुभक्तितः उभयोर्वरदम्पत्योरनुरूपं वस्त्रालङ्कार माल्यकैः सा शीघ्रं बेषं चकार ॥४०॥

अर्थः—सुन्दर अनुराग पूर्वक दम्पति दोनों सरकार के मन के अनुकूल (अनुरुप) वस्त्रभूषण मालादिकों से उस विलासनी सखी ने शीघ्र शृंगार कर दिया ॥४०॥

मू०-गत्वा तौ मालती कुञ्जं सांगानन्द सखीयतः ।
तस्या सेवां संगृही तौ प्रेम्णा परमर्हर्षितौ ॥ ४१ ॥

अन्वयः—तौ मालती कुञ्जं गत्वा सांगानन्द सखी तस्या सेवां संगृहीतौ प्रेमणा यतः परम हर्षितौ ॥४१॥

अर्थः—दोनों सरकार मालती कुञ्ज में गये सांगानन्द सखि के सेवा को ग्रहण किये, जिससे दोनों सरकार उसके प्रेम से अति हर्षित हुए ॥४१॥

मू०-केलिकुञ्जांतरगतः श्रीरामः सीतया सह ।
यत्र वृन्दा तखी नित्या नित्यानन्दे निमज्जति ॥ ४२ ॥

अन्वयः—सीतया सह श्रीरामः केलिकुञ्जान्तरगतः यत्र नित्या वृन्दा-सखी नित्यानन्दे निमज्जति ॥४२॥

अर्थः– श्री सीता जी के सहित श्रीराम जी केलिकुञ्ज के भीतर गये, जहाँ नित्य सखी वृन्दा नित्यानन्द में डूबती और डुबाती हैं ॥४२॥

मू०–विहरंस्तत्र हर्षेण केलि कौतूहलेन च ।
तोषयित्वा च यस्यां तां कामेन कलनेन च ॥ ४३ ॥

अन्वयः—तां कामेन कलनेन तोषयित्वा च यस्यां केलिकौतूहलेन च हर्षेण तत्र विहरन ॥४३॥

अर्थः—उस बृन्दा सखि को काम से और केलिकौतूहल से सन्तुष्ट करके जिस केलिकौतूहलों के द्वारा उस कुञ्ज में परम हर्ष से बिहार करके ॥४३॥

मू०–ततस्तु सुखदं नाम कुञ्जं दृष्ट्वा मनोरमम् ।
उभौ परम सन्तुष्टौ नित्या यत्र विराजते ॥ ४४ ॥

अन्वयः—तु ततः मनोरमं सुखदं नाम कुञ्जं दृष्ट्वा यत्र नित्या सखो विराजते उभौ परम सन्तुष्टौ ॥४४॥

अर्थः—उसके बाद फिर मनरमणीय सुखद नाम के कुञ्ज को देखे, जहाँ पर नित्या नाम की सखि विराजमान है । और दोनों सरकार परम सन्तुष्ट हुए ॥४४॥

मू०–ततौ हिंडोलके कुञ्जे डोलयित्वा मुहुर्मुहुः ।
प्रेम प्रदर्शनी सख्याः पूर्णकृत्वा मनोरथम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—ततः हिंडोलके कुञ्जे मुहूर्मुहुः डोलयित्वा प्रेम प्रदर्शनी सख्या मनोरथं पूर्ण कृत्वा ॥४५॥

अर्थः—उसके बाद हिंडोल कुञ्ज में बार-बार झूल करके प्रेम प्रदर्शनी नाम की सखि का मनोरथ पूर्ण करके ॥४५॥

मू०–मनोज्ञं डोलनं कुञ्जं ययौ राम सह प्रिया ।
बसन्त रंगनी यत्र वसन्ती परम हर्षिता ॥ ४६ ॥

अन्वयः—यत्र परम हर्षिता बसन्तरंगनी सखि वसन्ति मनोज्ञं डोलनं कुञ्ज सहप्रिया रामः ययौ ॥४६॥

अर्थः—फिर जहाँ पर अत्यन्त हर्ष में भरी हुई वसन्त रंगनी नाम की सखि बास करती है, उस मनरमणीय डोलन कुञ्ज में प्रिया जू के सहित श्रीराम जी गये ॥ ४६ ॥

मू०-बसन्त कुसुमैर्युन्तु वेष्टितं परमाद्‌भुतम् ।
कोकिलादि गणैर्जुष्टं कामसंदीपकारकम् ।। ४७ ।।

अन्वय:—काम संदीपकारकम् कोकिलादि गणैर्जुष्टं यत् तु परमाद्‌भुतं बसन्त कुसुमैः बेष्टितम् ।।४७।।

अर्थ:—काम संदीपकारक जो कोकिलादि से सेवित है, जिसको परम अद्‌भुत वासन्तिक फूलों से मंडित कर रखा है ।।४७।।

मू०-सखीभिः सीतयासार्द्धं गतोभोजन कुञ्जकम् ।
सदानुमोदनो नाम भौगैस्संतर्पिता मुदा ।। ४८ ।।

अन्वय:—सीतया सार्द्धं रामः सखीभिः भोजन कुञ्जकम् गतः सदानुमोदनी नाममुदा भौगैः संतर्पिता ।।४८।।

अर्थ:—श्री सीता जी के सहित श्रीराम जी सखियों के द्वारा भोजन कुञ्ज में गये, सदानुमोदनी नाम की सखि को भोगों के द्वारा सम्यक् प्रकार से तृप्त किये ।। ४८ ।।

मू०-शमनीय चारुकुञ्जं दृष्ट्‌वान् भगवान प्रभुः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे कोमलास्तरणैर्वृतम् ।। ४९ ।।

अन्वय:—प्रभुः भगवान् कोमलास्तरणैर्वृतं शमनीयं चारुकुञ्जं दृष्टवान् अतुलं प्रहर्षं लेभे ।।४९।।

अर्थ:—सब तरह से समर्थ भगवान् श्रीराम जी कोमल बिछावन वाले कुञ्जों से घिरा शयन करने योग्य सुन्दर कुञ्ज को देखकर असीम हर्ष को प्राप्त हो गये ।। ४९ ।।

मू०-स्थित्वा यत्र सखीसाक्षात् श्रीमन्मदनमञ्जरी ।
सुष्वाप सीतासार्द्धं तस्थौ प्रेम्णा प्रवोधितः ।। ५० ।।

अन्वय:—यत्र साक्षात् श्रीमन्मदन मंजरी सखी आसीत् तया सीतया सार्द्धं स्थित्वा सुस्वाप प्रेम्णा प्रवोधितः तस्थौ ।।५०।।

अर्थ:—जहाँ पर साक्षात् श्री मन्मदन मंजरी सखि जी रहती हैं । उस (शयन कुञ्ज) में बैठ करके फिर शयन कर गये । और फिर अनुराग पूर्वक प्रातः काल जाग्रत होकर बैठ गये ।।५०।।

मू०–अष्टदलस्योपकोणे वल्लीपादमण्डिता ।
माधवी चम्पकामल्ली पुन्नागा मालती तथा ।। ५१ ।।
लवंगलतिकाधात्री तुलसी परमाद्भुताः ।
सर्वगन्धयुताः सर्वाः सर्वपुष्प प्रपूरिताः ।। ५२ ।।

अर्थः—अष्ट उपदलों के कोनों में लता वृक्षों से भूषित ये आठ वन हैं जिनका नाम— १-माधवी २-चम्पका ३-मल्ली ४-पुन्नागा ५ मालती और ६-लवंगलतिका ७ धात्री ८-परमाद्भुता तुलसी ये आठ वन सब प्रकार के सुगन्धों से परिपूर्ण सर्व प्रकार के फूलों से परिपूर्ण फूले हुए हैं ।।५१ व ५२।।

मू०–फलानि यत्र स्वादूनि पत्राणि चामृतादपि ।
तत्र सख्यो विराजन्ते यन्त्र हस्ता प्रहर्षिता ।। ५३ ।।

अन्वयः—यत्र अमृतादपि स्वादूनि फलानि च पत्राणि तत्र यन्त्र हस्ताः प्रहर्षिता सख्यो विराजते ।।५३।।

अर्थः—जहाँ पर अमृत से भी अधिक मीठे स्वाद वाले फल और पत्र हैं, उन वन में हाथों में वाद्यादि यन्त्रों को लिये हुए अत्यन्त हर्ष में भरी हुई सखियाँ बिराजती हैं ।।५३।।

मू०–गायन्त्यो नृत्य यन्त्यश्च बीक्षयन्त्यः सुदम्पती ।
तासां नामानि मुनिराट् श्रूयतां हृदिधारय ।। ५४ ।।

अन्वयः—गायन्त्यो नृत्ययन्त्यश्च सुदम्पती वीक्ष यन्त्यः हे मुनिराट् तासां नामानि श्रूयतां हृदिधारयः ।।५४।।

अर्थः—वे सब सखियाँ गान करती हुई, और नृत्य करती हुई, तथा सुन्दर दम्पती (युगल सरकार) को देखती हुई हे मुनियों के राजा श्री अगस्त जी उनके नामों को सुनिये और हृदय में धारण कीजिए ।।५४।।

मू०–बीणावती वीणहस्ता बेणुहस्ता सुगन्धिका ।
कविलास विलासेन शोभा शोभान्विता भवेत् ।। ५५ ।।

अर्थः—उन सखियों के ये नाम हैं १-वीणावती २-वीणाहस्ता ३-वेणुहस्ता ४-सुगंधिका ५-कविला ६-सविला ७-शोभा ८-शोभान्विता ।।५५।।

मू०—सप्तस्वरान्मुखेनैव धृत्वासा सुखदा सती ।
खंजनाक्षी करे धृत्वा खंजरी रसमंजरी ॥ ५६ ॥

अन्वयः—मुखेनैव सप्तस्वरान् धृत्वा सुखदासती सा खंजरी करे धृत्वा खंजनाक्षी च रसमंजरी रराज ॥५६॥

अर्थः—मुख से ही सातों स्वरों को उच्चारण करती हुई अत्यन्त सुखदाई होने पर भी वे सब सखियाँ कोई खंजरी हाथ में लिये खंजनाक्षी नाम की सखि तथा रसमंजरी ॥ ५६ ॥

मू०—गानकलाकरे नीत्वा मृदङ्गं मधुरस्वरम् ।
सारङ्गलोचनी साङ्गीं बादयत्यति हर्षिता ॥ ५७ ॥

अन्वयः—मधुर स्वरं मृदङ्गकरे नीत्वा गान कला अति हर्षिता सारङ्गलोचनी सारङ्गी वाद्यन् ॥५७॥

अर्थः—मधुर स्वर से बजाते मृदंग को हाथ में ली हुई गान कला और अत्यन्त हर्ष में भरकर सारंगी को बजाती हुई श्री सारंग लोचनी जी तथा सुखदामिनी जी आदि ॥ ५७ ॥

मू०—सुखदामिनी सुखस्पर्शा सुखमण्डलमण्डिता ।
सर्वाः सर्वरसाभिज्ञाः श्रीरामेङ्गितराधिकाः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—सुखदामिनी सर्वाः सर्वरसाभिज्ञाः सुखमण्डलमण्डिता सुखस्पर्शा रामेङ्गित राधिकाः ॥५८॥

अर्थः—सुखदामिनी जी आदि सभी सखियाँ सभी प्रकार के रसों को जानने वाली सुखमयी मण्डल रूप में भूषिता सभी सुखस्पर्शा (सुखमय स्वरूप वाली) है और श्रीराम जी के संकेतानुसार आराधना करने वाली हैं ॥५८॥

मू०—वराटके केशवराटकान्विते महामणींद्राद्‌भुत चारुमण्डपे ।
सोमार्कवह्निद्यूति कोटिवञ्चके चिंतामणेश्चित्त विमोहकारके ।५९।

अन्वयः—कोटि सोमार्क वह्नि द्यूति बंचके चित्त विमोहकारके चिंतामणेः महामणींद्राद्‌भुत चारु मण्डपे केशवराटकान्विते वराटके ॥५९॥

अर्थः—करोड़ों चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि के प्रकाश को ठगने वाला चित्त को अत्यन्त विमोहित करना वाला, चिंतामणि का और महामणीन्द्रों से अद्‌भुत सुन्दर

मण्डप के भीतर सूक्ष्म केश वाली महासखी समाज से परिपूर्ण ब्रह्मस्वरूप श्री सीताराम जी हैं ॥५६॥

मू०-तच्चोल्लसत्पीठ पवित्र निर्मले मन्त्रैः सुवर्णार्चशतैः समांचिते ।
सकोमले केवल वर्चसत्वा पारे गुरोर्वाक्य सुगम्य रूपे ॥६०॥
स प्रणवैः सर्ववीजैः सर्वमन्त्रैश्चबेष्टिते ।
यथा मणिगणाकोर्णे विभाति मध्य नायकः ॥ ६१ ॥

अन्वयः—सुवर्णार्चशतैः समांचिते मन्त्रैः पवित्र निर्मले केवल वर्चसत्वा पारे सकोमले गुरोर्वाक्य सुगम्य रूपे तच्चोल्लसत् पीठे स प्रणवैः सर्ववीजैः सर्व मन्त्रैः च यथा मणि गणाकीर्णे च वेष्टिते पीठे मध्य नायकः विभाति ॥ ६० व ६१ ॥

अर्थः—सोने के प्रकाश से सैकड़ों गुणा अधिक चमकीले अनन्त मन्त्रों से सैकड़ों गुणा अधिक पवित्र निर्मल केवल प्रकाशमय सत्व से परे अत्यन्त सुन्दर कोमल जो गुरू वाणी से ही सुगम है, उस मण्डप के भीतर प्रणवयुक्त सभी मन्त्रों के द्वारा घिरा हुआ अत्यन्त सुन्दर सुकोमल सिंहासन है, जिस प्रकार मणि समूहों से घिरा रहे, इस प्रकार उस सिंहासन के मध्य में सिंहासन के अधिनायक (श्री सीताराम जी) मनोहर प्रकाशमान शोभित हो रहे हैं ॥६० व ६१॥

मू०-तत्रावसत्पद्मपलास लोचनः प्रलम्ब वाहुद्वय सुप्रसन्नः ।
प्रतप्त चामीकर भूषणां चितो यस्यांङ्गना जानकी जीवन प्रियाः॥

अन्वयः—प्रलम्ब वाहुद्वय पद्मपलासलोचनः प्रतप्त चामीकर भूषणां चितः यस्य जीवन प्रियाः जानकी अंगना सुप्रसन्न तत्र अवसत् ॥६२॥

अर्थः—बड़ी लम्बी दो भुजा और कमलदल के सदृश्य विशाल नेत्र विशेषतायें हुये प्रकाशमान सुन्दर सोने के भूषणों से भूषित जिनके (श्रीराम जी के) जीवन की अतिशय प्रिया श्री जानकी जी सभी अंगनाओं में प्रधान अंगना हैं । वे श्री राम जी प्रसन्न हुए, पूर्वोक्त सिंहासन पर बिराजे हैं ॥६२॥

मू०-परास्परालिंगितर्मिगतज्ञं हास्येन वाक्येन निमज्जतान्तरम् ।
रासास्पदं सर्वसुखास्पदं तं नमामि रासेश्वरमप्रधृष्टब्यम् ॥६३॥

अन्वयः—हास्येन वाक्येन निमज्जतान्तरम् ईंगितज्ञं परस्परालिंगितं रासास्पदं सर्वसुखास्पदं अप्रधृष्यं रासेश्वरं तं नमामि ॥६३॥

अर्थः—हास्य और विलासमय बचनों से रस में डूबे हुए अन्तःकरण वाले सभी के मनोभावों को समझने वाले परस्पर सभी से आलिंगित रासरस के मूल स्थान सभी प्रकार के सुखदाता जिनको कोई धर्षणा (नीचा) न कर सके, ऐसे रासेश्वर श्री सीताराम जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥६३॥

मू०-तत्र सख्यः प्रसेवन्ते ससीतं राघवं मुदा ।
लक्ष्मणा चारुशीला च भद्रामानवती तथा ॥ ६४ ॥

अन्वयः—तत्र ससीतं राघवं लक्ष्मणा च चारुशीला भद्रा तथा मानवतो सख्यः मुदा प्रसेवन्ते ॥६४॥

अर्थः—उपरोक्त सिंहासन पर बिराजे हुए श्री सीता जी सहित श्रीराम जी को श्री लक्ष्मणा जी और सर्वेश्वरी श्री चारूशीला जी तथा भद्रा जी मानवती जी ये प्रमुख सखियाँ आनन्द में भरकर युगल सरकार की सेवा करती हैं ॥६४॥

मू०—परमानन्द जननीं कृष्णासर्वांग शोभिता ।
धृत्वातपत्रं काचित्तु मयूर पुच्छ गुच्छकम् ॥ ६५ ॥

अन्वयः—सर्वांग शोभिता कृष्णा परमानन्द जननी (अन्योऽपि सीता सखी समाजः) काचित् धृत्वात पत्रं तु मयूर पुच्छ गुच्छकम् ॥६५॥

अर्थः—सभी अंगों से सर्वांग शोभिता किशोरावस्था सम्पन्न परमानन्द को पैदा करने वाली (श्री सीता जी की बहुत से सखियों का समाज) कोई छत्र लिए, तो कोई मयूरपिच्छ कोई मूरछल लिए हुए ॥६५॥

मू०—काचित्धृत्वा चामरं च काचित्ताम्बूलमुत्तमम् ।
सर्वांगादर्पणं काचिज्जलं काचित्तुसत्तमा ॥ ६६ ॥

अन्वयः—च काचित् चामरं धृत्वा काचित् उत्तमं ताम्बूलं च सर्वाङ्ग दर्पणं काचित् सत्तमा जलं तु ॥६६॥

अर्थः—और कोई युगल सरकार को चँवर धारण करके चँवर करती हुई, कोई उत्तम तरह से सुन्दर पान को ली हुई, कोई सर्वांग दर्पण को लिए हुये, कोई उत्तम श्रेष्ठ जलझारी लिए हुए और ॥६६॥

मू०–मङ्गलं कलशं काचित्धृत्वाध्यजमनुत्तमम् ।
आनन्दमग्नाः सर्वाश्च पश्यन्ति रमयन्ति च ।। ६७ ।।

अन्वयः—काचित् मङ्गलं कलशं उत्तमं ध्वजं धृत्वा आनन्दमग्नाः सर्वाः रमयन्ति च पश्यन्ति ।।६७।।

अर्थः—कोई मंगल कलश को ली हुई, कोई उत्तम ध्वज को ली हुई सभी आनन्द मग्न होकर रमण करती हैं और रमणीय दृश्य को देखती हैं ।।६७।।

मू०–नित्यसिद्धा नित्यसाध्या दम्पत्योः पाद सेवनम् ।
कुरु ते परमया भक्त्या नानाभाव प्रपूरिताः ।। ६८ ।।

अन्वयः–नित्यसिद्धा नित्यसाध्या परमयाभक्त्या नानाभाव प्रपूरिताः दम्पत्यो पादसेवनं कुरुते ।।६८।।

अर्थः–ये सब सखियाँ कोई नित्य सिद्धा हैं, कोई मुक्तपार्षद हैं, परम अनुराग पूर्वक अनेक भावों से परिपूर्ण अन्तःकरण वाली श्री सीताराम जी के युगल चरणों की सेवा करती हैं ।।६८।।

मू०–अयोध्या सरयूश्चाग्रे यंत्र हस्ता शुचिस्मिता ।
निरीक्षते राम वक्रं प्रेमामृत परिप्लुता ।। ६९ ।।

अन्वयः—अयोध्या च सरयूः प्रेमामृत परिप्लुता शुचिस्मिता यन्त्रहस्ता अग्रे श्रीरामवक्रं निरीक्षते ।।६९।।

अर्थः—श्री अयोध्या जी और श्री सरयू जी ये दोनों भी (मूर्तिमान सखियों के रूप में) हृदय अनुराग में डूबी हुई, प्रेमामृत में पगी हुई, मन्द मुस्क्याती हुई, हाथ में वीणा यन्त्र लिये श्रीराम जी के आगे खड़ी होकर मुखचन्द्र को देख रही हैं ।।६९।।

मू०–सुरुचिर जलदाभं भावनाभावगम्यं कनकनिकर भास्वज्जानकी वामभागम् । स्मितसुचिमुखकान्तं कामिनी कामकारं नमतहृदि-वराब्जे प्रीत रासेश्वरं तं ।। ७० ।।

अन्वयः—सुरुचिर जलदाभं कनकनिकरभास्वज्जानकी वामभागं स्मित सुचिमुखकान्तं भावनाभावगम्यं कामिनी कामकारं तं रासेश्वरं हृदिवराब्जे प्रीत नमत ।।७०।।

अर्थः—सुन्दर जलदाता मेघ के समान श्याम श्री अंगवर्ण वाले, तपाये हुए सोने के समूह के समान गौरांगी श्री जानकी जी को वामभाग में लिए हुए, परम रस में भरकर मन्द मुस्कयाते हुये, चन्द्रमा सदृश मुख कान्ति वाले, कृपादृष्टि रूप सद्गुरु प्रदत्त मन्त्र के अर्थगत भाव से जानने योग्य (भावनागम्य) कामिनियों के कामनाओं को पूर्ण करने वाले उन रासेश्वर श्रीराम जी को अपने हृदय कमल में अनुराग पूर्वक रख करके प्रीति पूर्वक नमस्कार करें ॥७०॥

मू०-जयति जनकजायाः पादपद्मं मनोज्ञं, हरिहरविधि वन्द्यं साधकानां सुसेब्यं । नखरनिकर कान्तं मुद्रिकानुपुराद्यैरहरहर्हृदिमध्ये योग योगीशभाव्यम् ॥ ७१ ॥

अन्वयः—मुद्रिका नुपुराद्यैः नखरनिकरकान्तं मनोज्ञं जनकजायाः पाद पद्मं अहरहः हृदिमध्ये योगीश योगभाव्यम् हरिहर विधि बन्द्यं साधकानां सुसेब्यं जयति ॥७१॥

अर्थः—मुद्रिका नुपुरादिकों के द्वारा नख समूहों से प्रकाशमान मन रमणीय श्री जानकी जी के पद कमल दिन-रात हृदय के अन्दर बड़े-बड़े योगीशों के योग (आत्मसम्बन्ध) के द्वारा भावना किये गये, ब्रह्मा, विष्णु, महेश से नमस्कृत शरणागत साधकों के द्वारा सुन्दर तरह से सेवित चरणों की जय हो ॥७१॥

मू०-जयत्ययोध्या रमणो रसात्मा विलासिनी पूर्ण क्रीड़ाभिलाषः ।
सुचारु चामीकर चीरधारी धरासुता चित्तविनोदकारी ॥ ७२ ॥

अन्वयः—सुचारु चामीकर चीरधारी धरासुता चित्त विनोदकारी विलासिनि पूर्ण क्रीड़ाभिलाषः रसात्मा अयोध्या रमणः श्रीरामोजयति ।७२।

अर्थः—दिव्य सोने के प्रकाश के समान पीताम्बर पहनने वाले पृथ्वी कन्या श्री सीता जी के चित्त को आनन्दित (विनोद करने वाले) विलासिनी सखियों के इच्छापूर्वक (अभिलाषा युक्त खेल करने वाले) महारस की आत्मा श्री अयोध्या जी के रमण श्रीराम जी की जय हो ॥७२॥

मू०-न चन्द्रस्य गतिस्तत्र न सूर्य्यस्य गतिस्तथा ।
प्रभयाराम चन्द्रस्य सीतायाश्च प्रभावतः ॥ ७३ ॥

अन्वयः—रामचन्द्रस्य प्रभया च सीतयाः च प्रभावतः तत्र न चन्द्रस्य गतिः न सूर्यस्य गति तथा ।।७३।।

अर्थः—श्री रामचन्द्र जी के ऐश्वर्य से और श्री सीता जी के प्रभाव से उस स्थान में न चन्द्रमा की गति है, और न सूर्य की गति है, तथा ।। ७३ ।।
नोटः-ऐश्वर्य स्वरूपा श्री सीता जी हैं ।

मू०-सदा प्रकाशतेत्यर्थं स्थलं परमशोभनम् ।
यत्ध्यात्वा निमिषार्द्धेण रसिका यान्ति तत्पदम् ।।७४।।

अन्वयः—परम शोभनं स्थलं अत्यर्थं सदा प्रकाशते निमिषार्द्धेण यत् ध्यात्वा रसिका तत् पदं यान्ति ।

अर्थः—अतिसय शोभायमान वह स्थान हमेशा अत्यन्त प्रकाशित रहता है । आधेनिमेष भी जिसका ध्यान करने से रसिक जन (तत्) उस पद में चले जाते हैं । (यानि प्राप्त करते हैं) ।।७४।।

मू०-अयोध्या ध्यानगम्यासा सप्तपूर्यधिकारिणी ।
भगवानाद्य पुरुषो रमते यत्र चाद्यया ।। ७५ ।।

अन्वयः—सा सप्तपुरी अधिकारिणी ध्यानगम्या श्रींअयोध्या यत्र आद्याः सह आदि पुरुषः भगवान् रामोरमते ।।७५।।

अर्थः—वह सप्त पुरियों में (मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्तिका द्वारिकापुरी) इन छैः पुरियों की स्वामिनी सर्वा अधिकारिणी जो की ध्यान गम्या है, वही श्री अयोध्या जी है । जहाँ पर आदि शक्ति श्री सीता जी के साथ आदि पुरुष भगवान् श्रीराम जी आज भी रमण करते हैं ।।७५।।

मू०-आह्लादिनी शक्तिरूपा जानकी यस्य वामतः ।
तं रामं सच्चिदानन्दं नित्यं रासेश्वरं भजे ।। ७६ ।।

अन्वयः—यस्य बामतः आह्लादिनी शक्तिरूपा जानकी तं सच्चिदानन्दं नित्यं रासेश्वर रामं भजे ।।७६।।

अर्थः—जिनके बामभाग में आह्लादिनी परात्पर शक्ति श्री जानकी जी हैं; उन सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप नित्य अनन्त रासों के ईश्वर श्रीराम जी को मैं भजता हूँ ।।७६।।

मू०-तुरीया जानकी प्रोक्ता तुरीयो रघुनन्दनः ।
उभयोरंशजाः सर्वे चावताराह्य संख्यकाः ॥ ७७ ॥

अन्वयः-तुरीया जानकी प्रोक्ता तुरीयो रघुनन्दनः च उभयोरंशजाः ह्य संख्यकः अवताराः ॥७७॥

अर्थः—श्री जानकी जी तुरीयावस्था नाम से कही गयी हैं, इसी प्रकार श्री रघुनाथ जी तुरींय पुरुष कहे गये हैं, और इन्हीं दोनों सरकार के अंश से उत्पन्न असंख्य सभी अवतार होते हैं । तीन गुण-सत्, रज, तम, तीन अवस्था-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तीन कर्म-संचित, प्रारब्ध, क्रियामण, तीन देवता-ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये बारहों मिलकर आत्मा को बाँधते हैं, ये सब मायामय हैं । इन माया के आवरणों से परे चैतन्य ब्रह्मस्वरूप सच्चिदानन्द घन हैं ॥७७॥

मू०-सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः ।
श्रुतं दृष्टं मया सर्वं चिरायजीवानन्मुने ॥ ७८ ॥

अन्वयः—हे मुने रघूत्तमः सर्वेषां अवताराणाम् अवतारी चिरायजीवान् सर्वं मयाश्रुतं च दृष्टं ॥७८॥

अर्थः—श्री हनुमानजी कहते हैं कि—हे मुनि श्री अगस्त जी श्री रघुनाथ जी तो समस्त अवतारों के मूलकारण अवतारी हैं, चिरंजीवी होने के नाते मैंने यह सब सुना है और देखा भी है ॥७८॥

मू०-ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः संत्यन्ये चिरजीविनः ।
सर्वेऽपि विभवाशक्ता यतोहं विभवात्परः ॥ ७९ ॥

अन्वयः-ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः अन्येऽपि चिरजीविनः सन्ति सर्वं विभवाशाक्त यतः अहं विभवात्परः ॥७९॥

अर्थः—ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि अनन्त अवतार भी चिरंजीवी हैं, परन्तु सभी के सभी ऐश्वर्यं में आशक्त हुए मैं जिस ऐश्वर्यं से मैं परे हो गया ॥७९॥

मू०-माधुर्ये च वयस्याहमैश्वर्ये हनुमान्कपिः ।
किंचित्तेनैव जानामि रहस्यं रामसीतयोः ॥ ८० ॥

अन्वयः-माधुर्ये अहं वयस्या च ऐश्वर्ये हनुमान्कपिः ते नैव किंचित् रामसीतयोः रहस्यं जानामि ॥८०॥

अर्थः—युगल सरकार श्री रघुनाथ जी के माधुर्य लीला में मैं समान अवस्था वाली सखि हूँ, और ऐश्वर्य लीला में हनुमान नाम का बानर हूँ। इसी कारण से थोड़ा सा श्री युगल सरकार का रहस्य चरित्र मैं जानता हूँ ॥८०॥

इस जगह पर रसिक सन्तों की परम्परा में कुछ किंवदंती है जो इस प्रकार है। श्री परात्पर ब्रह्म की लीला दो प्रकार की है। (१) नित्य सगुण साकार जो कि कृपा के बिना कोई नहीं जान सकता है। श्री युगल सरकार की कृपादृष्टि से जो जानता है उसे सपने में भी मोह नहीं होता है। कृपादृष्टि रूपी वृष्टि को प्राप्त करके सभी अभय हो जाते हैं। (२) नित्य निर्गुण निराकार जो अत्यन्त सुलभ है। इसको जानकर भी, सगुणरूप जाने बिना बड़े-बड़े योगीश, मुनीश भी मोह में पड़ जाते हैं। उनका मोह सगुण साकार वाले कृपापात्रों के संग से निवृत्त होता है। श्री रामचरित मानस देखें—

दोहा-निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥ (उ०का०-७३)
यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपा, सपनेहुँ मोह न होइ ॥ (उ०का०-११६)
कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु, अभय किए सुर वृन्द।
भालु कीस सब हरषे, जय सुख धाम मुकुन्द ॥ (लं०का०-१०३)
बिनु विस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह विश्राम ॥ (उ०का०-९०)
चौ०-सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहि होइ जाई ॥
(अयो०का०-१२६)

परन्तु श्रीरघुनाथजी कब जनायेंगे, और किसको जनायेंगे, इस बिषय में यह बात को प्राचीन प्रसिद्धि है। श्री रघुनाथजी नित्य दिव्य सगुण साकार रूप से जब निर्गुण निराकार ऐश्वर्यमयी लीला को फैलाने लगे, उस समय अपने दिव्य कल्याणमय गुणों को प्रधान ईश्वर बनाये, "राघवस्य गुणो दिव्यो महाविष्णु स्वरूपवान्। वासुदेवो घनीभूतो तनुतेजो महाशिव"।

ऐसी अवस्था में महाशिव श्री रघुनाथ जी का अंग तेज

महाशम्भू रूप से श्री हनुमान रूप धारण किये। कारण यह था कि श्री रघुनाथ जी को उनके जनाने पर जाना जाता है। जान जाने का फल उन श्रीराम जी के समान ऐश्वर्यवान् हो जाना है। श्री हनुमान् जी ने कहा है कि श्री रघुनाथ जी को हम चार जने जानते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश और मैं (हनुमान्) परन्तु इन तीनों ने उस दिव्य ज्ञान का फल ऐश्वर्य ले लिया है। जिससे युगल सरकार की समता पा गये। मैंने नहीं लिया। क्यों नहीं लिया—जब जानने का फल ही ऐश्वर्य है, तो क्यों नहीं लिया ?

दिव्य गुणों को प्रगट करने के पहले भगवान् श्रीराम जी ने अपनी प्रतिकूल इच्छा (संकल्प) किया, जिससे असत् अज्ञान, दुःखमय माया को प्रगट कर लिया था। आपने "एकोऽहं वहूस्याम" एक से बहुत होने केलिए सत्य संकल्पता से कल्पना किये। उस कल्पना में आपका तेज प्रवेश कर गया, जिस तेज में महाविष्णु, वासुदेव, महाशम्भू ईश्वरों के रूप में प्रगट हो गये। श्री वासुदेव से अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रगट हुये। महाविष्णु चार पाद विभूति के रूप में प्रगट हुये। महाशम्भू रूप से मैं (हनुमान) आत्मरूप से तो श्री किशोरी जू का चरण पड़ गया, तो समान अवस्था वाली सखी बना लिया; और ऐश्वर्य के स्थान में मैं महाशम्भू भाग कर माया के अन्दर सबसे नीच योनि बानर रूप धारण कर लिया। अब यदि मेरे को करोड़ों काम से अधिक सुन्दर, करोड़ों सूर्यों से अधिक प्रकाशमान बना भी दें तो माया के नियमों को भँग तो नहीं ही करेंगे। अतः मेरा बानर रूप नहीं मिटा सकेंगे। इससे वह दिव्य ज्ञान का फल जो ऐश्वर्य है सो लौटकर श्री रघुनाथ जी में ही प्रवेश कर गया। इसी से रघुनाथजी मेरी निष्कामता पर मेरे ऋणिया बन गये, और श्री सीता जी ने मेरी आत्मा को अपनी सखियों में सर्वेश्वरी श्री चारुशीला और श्रीं प्रसादा जी बना लिया। सभी ऐश्वर्य का मूल स्थान महामाधुर्य सच्चिदानन्द परात्पर ब्रह्म सुख ही है। अतः श्री हनुमान जी अपने को ऐश्वर्य से परे ऐसा भी कहते हैं ॥८०॥

मू०-नित्यलीला परिकरायेस्यु रघुवरादयः ।
तैः सार्द्धं भगवान् रामोऽयोध्यायामेव दीप्यते ।। ८१ ।।

अन्वयः—ये रघुवरादयः नित्यलीला परिकराः स्युः तैः सार्द्धं अयोध्या यां एव भगवान् रामो दीप्यते ।।८१।।

अर्थः—जो श्री रघुनाथ जी के अनुयाई भक्तजन नित्य परिकर हैं उन्हीं के साथ श्री अयोध्या जी में ही भगवान् श्री रामचन्द्र जी प्रकाशमान होते हैं ।।८१।।

विशेष देखें—"अयोद्या यामेव दीप्यते" केवल अयोध्या में ही भगवान् प्रकाशित होते हैं, इसका भाव है कि आत्मा भगवत्धाम का ही अंश है । भगवान् चार पाद विभूति स्वरूप हैं । आत्मा, विभूतियों का ही प्रेरक की प्रेरणा से अंश है । इन सब विभूतियों का अंशी श्री सीताराम जी ही हैं, और श्री राम जी के हित चाहना से श्री सीता जी एक रूप से धाम हैं और एक रूप से धाम की देवी नित्य श्रीरामजी के समान सुख भोगती हैं, आत्मा विभूतियों का निर्गुण निराकार अंश है । जो आत्मा विभूतियों का शरणागत होगा, वह विभूतियों का पार्षद होता है । जो श्री सीताराम जू के कृपा रूप परम्परागत कृपादृष्टि के मूर्तिमान् स्वरूप श्री सद्गुरुदेव जी के द्वारा युगल मन्त्र को पा गया तो बह आत्मा युगल सरकार की कृपा से श्री अयोध्या जी का अंश होकर उसकी आत्मा अयोध्या हो जाती है । अतः शरणागतों के ही हृदय में भजन सेवा के प्रभाव से आत्मा का स्वरूप श्री अयोध्या हो जाता है, श्री अयोध्या जी ही व्यापक ब्रह्म हैं, श्री राम जी कभी भी रूपान्तर नहीं होते हैं—"राम रूप दूसर नहिं देखा ।" और "राम न देखेउ आन ।" (श्रीराम चरित मानस) ।

श्रीमद्भागवद्गीता में भी आत्मा को भगवत्धाम कहा गया है । देखना चाहिये—अ० ८ के २० व २१, अ० १५ के ६, अ० १४ के २७ के अनुसार ।

रघुवराद्यः—जितने ईश्वर हैं, वे श्री अयोध्या जी के ऐश्वर्य से श्री राम जी की इच्छा से, ईश्वर रूप अलग - अलग नाम, रूप, लीला, धाम स्वरूप हो जाते हैं । जिन ईश्वरों से जगत् व्यापार चलाया जाता है ।

प्रकृति के अन्दर देवता लोग भी इन ईश्वरों के अंश हैं। जो जीव जिस ईश्वर का शरणागत होता है, उसी ईश्वर के धर्म रूप में पार्षद हो जाता है, श्रीरामजी के शरणागति धर्म से सभी पार्षद रघुबरादि कहे जाते हैं।

मू०-गोलोक साकेत समावुभौमुने कदापि भेदो नहि राघवस्य ।
उभौ तु विश्रामनिवास धाम्नी परस्परावास शदृशाद्विलासात्।८२।

अन्वयः—विलासात् विश्राम निवास धाम्नी उभौ तु परस्परावास शदृशात् राघवस्य साकेत गोलोक भूमौ हे मुने कदापि भेदो न ॥८२॥

अर्थः – रास विलासों के भेद से विश्राम निवास दोनों धामों में परस्पर महलों की समानता होने से श्रीराम जी के साकेत धाम और गोलोक धाम दोनों में, हे अगस्त जी कोई प्रकार का मेद नहीं है, क्योंकि श्री रघुनाथ जी अपने अंग प्रत्यंगों में सभी ईश्वरों और भक्तों को समान सुख देते हैं, अत। दोनों धामों में भेद नहीं है ॥८२॥

मू०-अस्माद्रासादादि भूतान्नानारासो भविष्यति।
ज्ञात्वै वं रसिकाः सर्वे रमन्ते कथयन्ति च ॥ ८३ ॥

अन्वयः—अस्मात् आदिभूतात् रासात् नानाभेदेन रासो भविष्यति सर्वे रसिका एवं ज्ञात्वा रमन्ते च कथयन्ति ॥८३॥

अर्थः – यह श्रीराम जी का आदिभूत रास से नाना प्रकार के भेद रास के होते हैं, सभी रसिक जन ऐसा जान करके चाहे जहाँ भी रमण करते हैं, और कथन भी इसी ढंग से करते हैं ॥८३॥

मू०-अस्मिन्महारास रसोत्सवाय मनोनिविष्टं रसिकाग्रणीशः ।
विधौ निषेधे दुरिते सुकर्मणि न बाध्यते तं यथा सदा गतिः।८४।

अन्वयः—रसिकाग्रणीशः अस्मिन्महारास रसोत्सवाय मनोनिविष्टं तं यथा सदागतिः तथा विधौ निषेधे दुरिते सुकर्मणी न बाध्यते ॥८४॥

अर्थः—जो रसिकों में अग्रशिरोमणी हैं, वे इस महान् राम रास रसोत्सव के लिए अपने मन को आवेषित करते हैं, ऐसे श्रीराम रसिकों को जैसे वायु देवता, सर्वत्र जाते हुए कहीं रुकते बँधते नहीं हैं, उसी प्रकार उन श्रीराम रसिकों को विधिनिषेध युक्त पाप-पुण्य से कोई बाधा नहीं पहुँचती है, अर्थात् बन्धन नहीं होता है ॥८४॥

मू०-कैवल्य दौर्बल्यकरं महारसं सीतापतेर्रासविलास माद्यम् ।
कायेन वाचा मनसास्मरेद्यः सयाति गोलोकं निरामयं पदम् ।८५।

अन्वयः—सीतापतेः आद्यं रासविलासं महारसं कैवल्य दौर्बल्यकरं यः कायेन, बाचा, मनसास्मरेत् स गोलोकं निरामयं पदं याति ॥८५॥

अर्थः—श्री सीताराम जी के जो आदि रास विलास हैं । सबसे प्रथम रास विलास है, यह सभी रासों में जो महारास है वह कैवल्य मोक्ष को दुर्बल करने वाला है, जो कोई मन, वचन, कर्म से इस महारास का स्मरण करेगा । वह प्रकृति के विकृति से परे गोलोक में चला जायेगा । अर्थात् गोलोक के निरामय पद में चला जाता है ॥८५

मू०-इदं रहस्यं परमं सुगोपनं मयैवचोक्तं निगमागमात्परम् ।
यः श्रद्धया भक्तियुतः पठेद्वा सयाति रामस्यपदं महामुने ॥८६॥

अन्वयः—इदं परमं सुगोपनं निगमागमात्परं रहस्यं मयैव उक्तं च हे महामुने यः भक्तियुतः वा श्रद्धया पठेत् स रामस्य पदं याति ॥८६॥

अर्थः—यह परम गोपनीय वेदशास्त्रों से परे का रहस्य मैंने ही कहा है, और हे महामुनि अगस्तजी ! इस रहस्य को भक्ति युक्त होकर अथवा श्रद्धा से पढ़ेगा वह श्रीराम जी के दिव्य धाम में चला जायेगा ॥८६॥

मू०-यो भावकोभावयते हृदाब्जे रामस्य रासोरस वारिपूर्णः ।
पिवेच्च सत्सार सुधाधिकं रसं नरोचते क्षार जलं यथाकिल ।८७।

अन्वयः—रामस्य रसवारि पूर्णः रासः यो भावको हृदाब्जे भावयते किल सत्सार सुधाधिकं रसं पीत्वा यथा क्षारजलं न रोचते ॥८७॥

अर्थः—श्रीराम जी का रस जल से परिपूर्ण जो रासरस है । जो भावुक अपने हृदय कमल में भावना करता है, उसको क्यातों सत्सार अमृत से भी अधिक रस को पीने पर जैसे खारा जल अच्छा नहीं लगता है ॥८७॥

मू०-श्रुत्वा रहस्यं परमं पवित्रं महामुनिः सुस्थिरमारसो भवत् ।
परं परालिंगन भावयुक्तं दत्वा ययौ स्वाश्रम मातमनस्तदा ॥८८।

अन्वयः—महामुनिः परमं पवित्रं रहस्यं श्रुत्वा सुस्थिरं आरसः अभवत् तदा भावयुक्तं परं परालिंगनं दत्त्वा मातमनः स्वाश्रम ययौ ॥८८॥

अर्थः—महात्मा श्री अगस्त जी महाराज (महामननशील) परमपवित्र रहस्य को सुनकर हृदय में सुस्थिर महारस युक्त हो गये, उस समय भावयुक्त परम्परा से श्री हनुमान जी को आलिंगन देकर अपने निजी आश्रम में चले गये ॥८८॥

मू०–गच्छन गच्छन्पथि मुनिवरः पूर्णप्रेमामृताब्धौ मज्जन् मज्जन्सपद-
योर्न्यास भेदं न वेद । पश्यन्पश्यन्हृदि रघुपतिं सीतया शोभिवामं
हृष्यन् हृष्यन् परम मुदितः प्रापगेहं चिराय ॥८९॥

अन्वयः—मुनिवरः पथि गच्छन् गच्छन् पूर्ण प्रेमामृताब्धौ मज्जन् मज्जन् स पदयोर्न्यास भेदं न वेद सीतया शोभिवामं रघुपतिं हृदि पश्यन् पश्यन् हृष्यन् हृस्यन् परममुदितः चिराय गेहं प्राप ॥८९॥

अर्थः—मुनि श्रेष्ठ श्री अगस्त जी रास्ते में चलते-चलते पूर्ण अनुराग से भरे समुद्र में डूबते-डूबते वे जिस रास्ते में चल रहे थे, पैरों का आगे चलना या पीछे चलना इस भेद को न समझ पाये, क्योंकि वामभाग में श्री रघुनाथ जी को अपने हृदय कमल में देखते-देखते महाहर्ष की लहरों में परम आनन्दित हो रहे हैं, इसलिए अपने घर में बहुत समय में पहुँचे ॥८९॥

मू०–गतेमुनावाशुग संभवोमहान् सम्भावने ध्यान मनाबभूव ।
स्मरन् स्मरन् रासरसं हृदाब्जे वाह्येन्द्रियज्ञान मनोनिबृत्तं ॥९०॥

अन्वयः—मुनौ गते आसुसम्भवः महान् सम्भावने ध्यान बभूव हृदाब्जे रास रसं स्मरन् स्मरन् अतः बाह्येन्द्रियज्ञानं निवृत्तम् ॥९०॥

अर्थः—मुनि महाराज के चले जाने पर वायु से उत्पन्न श्री हनुमान जी महान् सम्यक् प्रकार से सद्भावना में ध्यानमग्न हो गये, हृदय कमल में श्रीराम रास रस में स्मरण करते-करते शरीर की वाह्येन्द्रियों का ज्ञान निवृत्त हो गया ॥९०॥

मू०–हनुमतऋषेः काब्यं भाब्यं श्राब्यं सदैवहि ।
तस्मिन् ससीतारामोपि तुष्टोभवति नान्यथा ॥ ९१ ॥

अन्वयः—हनुमतऋषेः काब्यं सदैवहि भाब्यं श्राब्यं स सीतारामोपि तस्मिन् तुष्टोभवति अन्यथा न ॥९१॥

अर्थः—इस श्री हनुमत्संहिता के ऋषि श्री हनुमान जी हैं । श्री हनुमान जी का "काव्य" की हमेशा भावना करनी चाहिए । इस कर्म से श्री सीता जी सहित श्रीराम जी सन्तुष्ट हो जाते हैं (एतदतिरिक्त भगवत् प्रीति का दूसरा) उपाय नहीं है । यह बात ही सही है ॥९१॥

इति श्रीमद्हनुमत्संहितायां परम रहस्ये महारासोत्सवे
श्रीहनुमदग्रस्त संवादे पंचमोऽध्यायः ॥४॥

श्रीसीताराम रहस्य रसराजैकनिष्ठ दिनमणि आचार्य प्रवर अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्रीअग्रदेवाचार्य वंशावतंस श्रीस्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणार-विन्द मकरन्द रसलम्पट श्री जानकी शरण जी महाराज (मधुकर) द्वारा "श्रीहनुमत्संहिता" श्रीसीतारामरहस्य प्रकाशिका टीका चतुर्थोऽध्यायः ।

"वेदोक्तो हनुमान्नेवचारुशिला,,

(ऋग्वेद ५-३-३)

तवश्रियेमरुतो मर्जयन्त, रुद्रयत्ते जनिमचारुचित्रम् ।
पदं यद्विष्णो रूपमं निधायि, तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥

त्रिदण्डी स्वामी श्रीरामप्रपन्नाचार्य्य कृत

-: दीपिका टीका :-

अर्थः—श्रीराम विद्यामय स्थिर मना श्री हनुमान जी की देवता सब स्तुति करते हैं:-हे रुद्र हनुमान जी आपकी श्रीराम विद्यारूप सम्पदा को पाने के लिए देवगण भगवत् कृपापात्र सब आपका अन्वेषण करते हैं-गुरु रूप में आपको प्राप्त करना चाहते हैं । तप, ध्यान, आदि के द्वारा आपके शिष्यत्व के लिये प्रयास करते हैं । इस श्रीराम विद्या रूपी सम्पदा के कारण आपका उत्तम जन्म का नाम चारुशीला है, सो सफल है । क्योंकि आप विष्णु बाचक राम के पद समीप में अग्नितत्वात्मक रमणत्व युक्त रेफ पद को रखते हैं, तथा उसके साथ प्रणाम वाचक सभी इन्द्रियों का आलय हृदय, मन्त्र हृदय, नमः पद को रखते हैं अर्थात् "राममन्त्र में नमः" यह पद से श्रीराम विद्या की उपासना करते हैं नित्य समीप में रहते हैं । उसका ही जन्म सफल है तथा वही गुरु है जो स्थिर मन से श्रीराम विद्या की उपासना करता है ।

※ अथ षष्टमोऽध्यायः ※

श्री अगस्त्य उवाच—

मू०—इतो गत्वात्वहंवीर रामोत्साह समन्वितः ।
विविक्ते स्वाश्रमेस्थित्वा पुनरालोडितं मया ।। १ ।।

अन्वयः—हे वीर अहं इतो गत्वा तु रासोत्साह समन्वितः विविक्ते स्वाश्रमेस्थित्वा मया पुनः आलोडितं ।।१।।

अर्थः—श्री अगस्त जी महाराज बोले—हे महावीर श्री हनुमान जी मैं यहाँ से जब चला तो रास का उत्साह मेरे हृदय में सम्पूर्ण भरा हुआ था, एकान्त अपने आश्रम में जब मैं बैठा तो मैंने फिर मनन किया ।।१।।

मू०—यादृशी प्रीतिरेतासां श्री रामे वर्तते सदा ।
तादृशी सर्व जीवानां कथं जायेत राघवे ।। २ ।।

अन्वयः—एतासां सदा श्री रामेप्रीतिः वर्त्तते सर्वजीवानां तादृशी-प्रीतिः राघवे कथं जायेत ।।२।।

अर्थः— जिस प्रकार आत्मस्वरूप सम्बन्धि नित्य पार्षदों की प्रीति हमेशा श्री राम जी में निवास करती है । समस्त जीवो में इस प्रकार की प्रीति श्री रघुनाथ जी में कैसे पैदा हो जायेगी ।।२।।

मू०—एतत्प्रष्टुं पुनर्वीर ह्यागतोहं तवान्तिकम् ।
कथयस्व कृपां कृत्वा परं कौतूहलं हि मे ।। ३ ।।

अन्वयः—हे वीर एतत्प्रष्टुं ही अहं तवातिकं पुनः आगतः कृपां कृत्वा कथयस्व हि मे परं कौतुहलं ।।३।।

अर्थः— हे वीर श्री हनुमान जी, यह पूछने के लिये ही मैं आपके पास आया हूँ, कृपा कर कहिए, मेरे को यह सुनने के लिए परम कौतूहल है ।।३।।

मू०—कथं श्री रामे सम्प्रीतिर्जायते पवनात्मज ।
गृह देह कुटुम्बेषु बैराग्यं च कथं भवेत् ।। ४ ।।

अन्वयः—पवनात्मज श्रीरामे कथं सम्प्रीतिर्जायते च गृह देह कुटुम्बेषु कथं बैराग्यं भवेत् ।।४।।

अर्थः—हे श्री हनुमान जी, श्रीराम जी में सुन्दर अनुराग (सम्यक् प्रकार से प्रीति) कैसे होगी और सांसारिक घर, शरीर, परिवार वालों में (से) कैसे वैराग्य होगा ॥४॥

श्री हनुमानुवाच—

मू०-कुम्भोद्भव परं श्रेयः शृणुसत्यं वदाम्यहम् ।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं च सर्वदा ॥ ५ ॥

अन्वयः—कुम्भोद्भव अहं परं श्रेयः सत्यं वदामि शृणु च सर्वदा गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयम् ॥५॥

अर्थः—हे श्री अगस्त्य जी मैं परम कल्याण कारक सत्य विषय को कहता हूँ, सुनिये और यह सदा गुप्त रखने योग्य है, गुप्त रखने योग्य है, गुप्त रखने योग्य है ॥५॥

मू०-श्री रामेतु संप्रीतिस्सम्बन्धेनैव जायते ।
प्रीत्युत्पत्तिकरं रामेनान्यल्लोकेषु विद्यते ॥ ६ ॥

अन्वयः—श्री रामेतु संप्रीतिः सम्बन्धेनैव जायते रामे प्रीत्युत्पतिकरं लोकेषु अन्यत् न विद्यते ॥६॥

अर्थः—श्रीराम जी में प्रेम तो केवल सम्बन्ध से ही पैदा होता है (इसका कारण केवल गुरु जी ही हैं) परन्तु श्रीराम जी में प्रेम उत्पन्न करने वाला लोक में दूसरा अन्य कुछ नहीं है ॥६॥

मू०-वर्णितो भक्ति सम्बन्धो वेदतन्त्रादि शास्त्रके ।
गुरोः कृपां विना तत्र यथावन्न स्फुटो भवेत् ॥ ७ ॥

अन्वयः—भक्ति सम्बन्धः वेद तन्त्रादि शास्त्रके वर्णितः तत्र यथावत् गुरोः कृपा विना स्फुटो न भवेत् ॥७॥

अर्थः—भक्ति के सम्बन्ध तो वेद तन्त्र शास्त्र आदिकों में वर्णित है, परन्तु श्री गुरू महाराज के कृपा के बिना यथार्थ रूप से स्पष्ट नहीं होता है ॥७॥

मू०-यत्सारं सर्वशास्त्राणां गुह्यमत्यन्त दुर्लभम् ।
वक्ष्येऽमृतमयं विप्रज्ञात्वा त्वां भावभाजनम् ॥ ८ ॥

अन्वयः सर्वशास्त्राणां यद्गुह्यं यत्सारं अत्यन्त दुर्लभं हे विप्र त्वां भात्रभाजनं ज्ञात्वा अमृतमयं वक्ष्ये ॥८॥

अर्थः—सम्पूर्ण शास्त्रों में जो गुह्य और सार बात है, सो अत्यन्त दुर्लभ है, हे ब्राह्मण देवता आपको सद्‌भाव का पात्र जानकर यह अमृतमयी बात कहता हूँ, यहाँ विप्र कहने का भाव सतोगुण की प्रधानता से है ॥८॥

मू०-शृणुत्वं भक्ति सम्बन्धं तद्‌भेदांश्च घटोद्भव ।

सप्रीतिर्जायते यस्माक्छ्रा रामे सुखदा सदा ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे घटोद्भव भक्ति सम्बन्धं च तत्भेदां त्वं शृणु यस्मात् श्रीरामे सदा सुखदा संप्रीतिर्जायते ॥९॥

अर्थः—हे घटोद्भव श्री अगस्त जी भक्ति के सम्बन्धों को और उस सम्बन्ध के भेदों को आप सुनिये, जिससे श्रीराम जी में हमेशा सुखदाई अनुराग उत्पन्न होता है ॥९॥

मू०-यावच्छ्री रामसम्बन्धे दृढाप्रीतिर्नजायते ।

तावद्‌भ्रमति संसारेदुस्तरे बहुदुःखभाक् ॥ १० ॥

अन्वयः—श्रीराम सम्बन्धे यावत् दृढाप्रीतिर्न जायते तावद् दुस्तरे संसारे बहुदुःखभाक् भ्रमति ॥१०॥

अर्थः—श्रीराम जी के सम्बन्ध में जब तक दृढ़ प्रीति नहीं हो जायेगी, तब तक कठिन दुस्तर संसार जहाँ बहुत प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है, भ्रमता घूमता रहेगा ॥१०॥

मू०-ज्ञानं योगस्तपोदानमिष्टापूर्त्तं ब्रतं तथा ।

बैराग्यं निष्फलं चैव भक्ति सम्बन्धवर्जितम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—भक्ति सम्बन्ध वर्जितं ज्ञानं योगस्तपोदान मिष्टापूर्तं व्रत च तथा बैराग्यं निष्फलं एव ॥११॥

अर्थः—श्री रामभक्ति के सम्बन्ध से रहित ज्ञान, योग, तपस्या, दान, यज्ञों की सम्पूर्णता अनेक व्रत और उसी प्रकार बैराग्य भी निष्फल है ॥११॥

मू०-वेद तन्त्र पुराणेषु संहितायां च वर्णितः ।
पंचधाभक्ति सम्बन्धो ज्ञातव्यश्च गुरोर्मुखात् ।। १२ ।।

अन्वयः—पञ्चधा भक्ति सम्बन्धः गुरोर्मुखात् बेद तन्त्र पुराणेषु च संहितायां वर्णितः ज्ञातव्यः ।।१२।।

अर्थः—इष्टदेव के साथ पाँच प्रकार की भक्तियों का सम्बन्ध श्री गुरु महाराज के मुखारविन्द से वेद, पुराण, और संहिताओं में भी जो वर्णन हैं वह जानने योग्य है ।।१२।।

मू०-यथालोकेषु सम्बन्धः सख्यदा स्यादि वर्त्तते ।
तथा रामे हृदाकार्यः सम्बन्धः प्रीतिवर्द्धकः ।। १३ ।।

अन्वयः—सख्यदास्यादि सम्बन्धः यथालोकेषु वर्त्तते तथा श्रीरामे प्रीतिबर्द्धकः सम्बन्धः हृदाकार्यः ।।१३।।

अर्थः– संख्य दास आदि सम्बन्ध जिस प्रकार लोक में है । इसी प्रकार श्री राम जी में अनुराग बढ़ाने वाला सम्बन्ध हृदय से करने योग्य है ।।१३।।

मू०-दृढानुरागः श्रीरामे सम्वन्धैश्च विना नहि ।
भवेत्कदाचिल्लोकानां सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।। १४ ।।

अन्वयः—विना सम्बन्धैः च श्रीरामेदृढानुरागः लोकानां कदाचित् नहीं भवेत् अहं सत्यं सत्यं वदामि ।।१४।।

अर्थः– बिना सम्बन्ध के श्रीराम जी में दृढ़ानुराग संसारिक मनुष्यों का कभी भी नहीं होगा, मैं यह बात सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ ।।१४।।

मू०-सम्बन्धाख्यं परं तत्त्वं सहजानन्ददायकम् ।
तत्प्राप्त्यैव जीवानां प्रीतिर्भवति चाचला ।। १५ ।।

अन्वयः—सहजानन्द दायकं सम्बन्धाख्यं परं तत्त्वं च जीवानां अचलाप्रीतिः तत्प्राप्त्यैव भवति ।।१५।।

अर्थः—आत्मा का परमात्मा के साथ सहज आनन्द देने वाला सम्बन्ध नाम का परम तत्त्व ही है और जीवों का अचल अनुराग उस सम्बन्ध नामक तत्त्व को प्राप्त करने पर ही हो सकता है ।।१५।।

मू०-पञ्चधाभेदमस्तीह तच्छृणुष्व महामुने ।
शान्तो दास्यस्तथा सख्यः वात्सल्यश्च श्रृङ्गारकः ॥१६॥

अन्वयः—इह पञ्चभेदं अस्ति हे महामुनेः तत्श्रुणुष्व शान्तः दास्यः तथा सख्यः वात्सल्यशंच श्रृङ्गारकः ॥१६॥

अर्थः—इस विषय के सम्बन्ध में पाँच भेद हैं—हे महामुने वह मेरे से सुनिये, शान्त (भगवान को माता-पिता मानना) दास-अपने को सेवक मानना भगवान् को स्वामी मानना—

"सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि ॥ मानस ॥"

सखा भाव-भगवान् को अपना मित्र मानना, वात्सल्य भाव-भगवान् को अपना पुत्र, शिष्य, दामाद मानना और श्रृंगार भाव-पति-पत्नी रूप से श्रृंगार भाव मानना या सखी भाव मानना (सन्तों की सुन्दर मति (बुद्धि) रूपी स्त्री ही अपना पति भगवान को मानकर अनन्यता पूर्वक सेवा करती हैं, ऐसे सन्तों के लिए ही भगवान् का नाम, रूप, लीला, धाम, 'सन्त सुमति तिय सुभग श्रृंगारू' है ॥१६॥

मू०-एषामनेकभेदास्युः संक्षेपेण ब्रवीमिते ।
मुख्यं रस स्वरूपं च कथयिष्यामि तत्त्वतः ॥ १७॥

अन्वयः—एषां अनेकभेदाः स्युः ते संक्षेपेणब्रबीमि रसस्वरूपं मुख्यं तत्त्वतः कथयिष्यामि ॥१७॥

अर्थः—इन पाँचों सम्बन्धों में अनेक भेद हैं, आप से मैं संक्षेप से कहूँगा, इन सम्बन्धों के भीतर रस का स्वरूप मुख्य है, जिसको यथार्थ मैं आप से कहूँगा ॥ १७ ॥

मू०-शान्तिस्थायोरसो शान्तो विभावाद्यैस्समन्वितः ।
साधु संगानहंकार निर्वेदाद्यैर्यथा क्रमम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—यथा क्रमं अनहंकार निर्वेदाद्यैः साधुसंग विभावाद्यैस्समन्वितः शान्ति स्थाई शान्तरसः ॥१८॥

अर्थः—जैसा कि क्रमशः अहंकार रहित वैराग्यादिकों से साधू का संग विभावादिकों से संयुक्त जिसमें शान्तिभाव स्थाई है, वह शान्त रस है ॥१८॥

मू०-आदरस्थायीदास्योहि विभावाद्यैः समन्वितः ।
सुशरण्याज्ञाकरणदैन्यताद्यैर्यथाक्रमम् ।। १९ ।।

अन्वयः—दैन्यताद्यैर्यथा क्रमं सुशरण्याज्ञाकरण आदरस्थाई विभावाद्यैः समन्वितः हि दास्यः ।।१९।।

अर्थः—बड़ी नम्रता, दैन्य सुशीलता आदि गुणों से यथाक्रम सुन्दर शरण्य देवता श्री सीताराम जी का आज्ञा पालन करना आदर जिसमें स्थाई है, ऐसे विभावादिकों से युक्त को ही दास्य कहते हैं ।।१९।।

मू०-सख्यरतिस्थायी सख्योविभावाद्यैः सदायुत्तः ।
मधुरवाक् परिहास हर्षादिभिर्यथाक्रमम् ।। २० ।।

अन्वयः—मधुरवाक् परिहास हर्षादिभिः यथा क्रमम् सख्यरतिः स्थाई विभावाद्यैः सदा युतः सख्यः ।।२०।।

अर्थः—मधुर बोली, मधुर हास, परिहास, हर्ष आदिकों से क्रमशः संख्य, अनुराग जिसमें स्थाई है, उस विभाव, आलिंगन, उद्दीपनों से सदा संयुक्त संख्यः कहा जाता है ।।२०।।

मू०-वत्सलतास्थायीभावो वात्सल्यो विभवैर्यतः ।
चापल्यपुलकानिष्ट शंकादिभिर्यथाक्रमम् ।। २१ ।।

अन्वयः—विभवैर्युतः चापल्यः पुलकानिष्ट शंकादिर्भिः वत्सलता स्थाई भावः वात्सल्यः ।।२१।।

अर्थः—श्रृङ्गार, खाद्य, खेलौनादि, सम्पत्ति से युक्त लाड़ प्यार चपलता पुलकावली अनिष्ट (दृष्टिदोषादि) की शंकाओं से क्रमशः वात्सल्य स्थाईभाव है, जिसमें उसको वात्सल्य कहते हैं ।।२१।।

मू०-रतिस्थायी श्रृंगारको विभावाद्यैः समन्वितः ।
माधुर्यभ्रुकुटिक्षेप हर्षादिभिर्यथा क्रमम् ।। २२ ।।

अन्वयः—हर्षादिभिर्यथाक्रमम् माधुर्यभ्रुकुटिक्षेप रति स्थाई विभावाद्यैः समन्वितः श्रृङ्गारकः ।।२२।।

अर्थः—हर्षादिकों से युक्त क्रमशः माधुर्य भ्रुकुटि विलास करना रति है, स्थाई जहाँ ऐसे विभावादिकों से संयुक्त को श्रृङ्गार कहते हैं ।।२२।।

मू०-श्री मद्रघुपतिं साक्षात् ब्रह्म सर्वपरात्परम् ।
ज्ञात्वा भजतियोनित्यं सवैशान्तरसाश्रयः ॥ २३ ॥

अन्वयः—सर्वं परात्परं ब्रह्मज्ञात्वा साक्षात् श्रीमद्रघुपतिं यो नित्यं भजति स वैः शान्त रसाश्रयः ॥२३॥

अर्थः—सभी ईश्वरों से परे परब्रह्म जान करके साक्षात् जानकर श्री किशोरी जी के साथ श्री रघुनाथ जी को जो नित्य भजता है उसी को शान्त रस का आश्रयण कहा जाता है ॥२३॥

मू०-श्री रामं करुणासिन्धुं भक्त संरक्षणे परम् ।
बुद्धाभजति यों नित्यं सवैदास्य रसाश्रयः ॥ २४ ॥

अन्वयः—करुणासिंधु भक्त संरक्षणे परं श्रीरामं बुध्वा यो नित्यं भजति स वै दास्य रसाश्रयः ॥२४॥

अर्थः—करुणा के सिन्धु (समुद्र) भक्तों के संरक्षण में सावधान परायण इस प्रकार श्री सीताराम जी को जान करके जो नित्य भजन करता है । उसको दास्य रस का आश्रय कहा जाता है ॥२४॥

मू०-श्री रघुनन्दनं मित्रं प्रेम पात्रं विबुध्य च ।
स्नेहेन रमते नित्यं सहिसख्य रसाश्रयः ॥ २५ ॥

अन्वयः—मित्रं प्रेमपात्रं श्री रघुनन्दनं विबुध्य च नित्यं स्नेहेन रमते स हि सख्य रसाश्रयः ॥२५॥

अर्थः—मित्र भाव द्वारा प्रेम का पात्र श्री युगल सरकार को समझ करके और नित्य स्नेह से रमण करने वाले को ही सख्य रस का आश्रयण वाला कहा जाता है ॥ २५॥

मू०-बालं सौन्दर्य सहितम् कौमलांगं प्रमोददम् ।
सर्वदा जीवनं मत्वा सवै वात्सल्य संज्ञकः ॥ २६ ॥

अन्वयः—सौन्दर्य सहितं कोमलाङ्गं प्रमोददं बालं सर्वदा जीवनं मत्वा स वै वात्सल्य संज्ञकः ॥२६॥

अर्थः—सुन्दरता के सहित कोमल अंग वाला, आनन्ददाता बालक को हमेशा अपना संजीवन मानना उसी को वात्सल्य नाम से कहा जाता है ॥२६॥

मू०-मधुरं मनोहरं रामं पतिं सम्बन्ध पूर्वकम ।
ज्ञात्वा सदैवभजते सा श्रृंगार रसाश्रयः ।। २७ ।।

अन्वयः—मधुरं मनोहरं पतिसम्बन्ध पूर्वकं रामं ज्ञात्वा सदैव भजते सा श्रृङ्गार रसाश्रया ।।२७।।

अर्थः—मधुर मनोहर मेरे पति हैं, इस प्रकार के सम्बन्ध पूर्वक श्रीराम जी को जान करके हमेशा जो भजती हैं वह श्रृङ्गार रसाश्रया कही जाती हैं ।।२७।।

मू०-एवं भावनया नित्यं पराह्यव्यभिचारिणी ।
वर्द्धतेऽनुदिनं प्रीतिः सत्यं सत्यं न चान्यथा ।। २८ ।।

अन्वयः—एवं हि भावनया नित्यं अनुदिनं अव्यभिचारिणी परा प्रीतिः बर्द्धते न च अन्यथा सत्यं सत्यं वदामि ।।२८।।

अर्थः—इस प्रकार नित्य स्वरूपानुसार प्रभाव से भजन करने वालों की अव्यभिचारिणी परमा प्रीति नित्य प्रति बढ़ती जायेगी । यह बात अन्यथा (असत्य) नहीं है, मैं सत्य कहता हूँ, मैं सत्य कहता हूँ ।

"हरिंनरा भजंति येऽति दुस्तरम् तरंति ते" ।।२८।। मा० तु० कृ०

मू०-लोकेऽपि दृश्यन्ते साक्षात् सम्बन्धस्य प्रगलभता ।
किं पुनर्जानकी जानौ सर्व भावं प्रपूरके ।। २९ ।।

अन्वयः—लोकेपि सम्बन्धस्य प्रगलभता साक्षात् दृश्यते किं पुनः सर्व-भाव प्रपूरके जानकी जानौ ।।२९।।

अर्थः—लोक में भी सम्बन्ध की प्रौढ़ता अर्थात् दृढ़ता प्रत्यक्ष दिख पड़ती है फिर क्या कहना है सभी प्रकार के भाव को भक्तों के लिए देने वाले श्री जानकी जान श्री सीताराम जी में प्रौढ़ता के लिए ।।२९।।

मू०-देहत्रय विनाशं च कृत्वादौगुरु वक्रतः ।
ततः सम्बन्ध योग्यत्वं प्राप्नोति मुनिपुंगव ।। ३० ।।

अन्वयः—मुनिपुंगव, आदौगुरु वक्रतः देयत्रय विनाशं कृत्वा च ततः सम्बन्ध योग्यत्यं प्राप्नोति ।।३०।।

अर्थः—हे मुनि श्रेष्ठ श्री अगस्त्य जी—सबसे पहले संसार से कल्याण चाहने वाले जीव को श्री गुरु महाराज के मुखारविन्द से मन्त्र द्वारा संचित कर्म को नाश

करा करके श्री वैष्णवाग्नि लगवा करके कारण शरीर जो २ तत्त्व का है, उससे छुट्टी पावें । उसके बाद मन्त्र के अर्थ के रूप में अपना सम्बन्ध स्वरूप को समझ करके गुरु निष्ठापूर्वक श्री सीताराम जी का भजन करते हुए सूक्ष्म शरीर को छुड़ाने के लिए सहज स्वरूप से भजन करने पर सेवक-सेव्य भाव के कारण सूक्ष्म शरीर समाप्त होने पर सहज स्वरूप का प्रकाश प्राप्त कर इसके बाद क्रियामाण शरीर समप्त हो जाता है, फिर प्रिया-प्रियतम जू के वियोगाग्नि के द्वारा तीनों शरीर के विनाश होने से और उसके बाद सम्बन्ध की योग्यता प्राप्त होती हे ॥३०॥

मू०-जननीजनकौ सम्यग् ज्ञातव्यौ प्रथमोबिधिः ।
आचार्यस्य स्वरूपं च तथा तत्सेवनं मुने ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे मुने प्रथमोविधिः सम्यग् आचार्य स्वरूपं च जननी जनकौ ज्ञातव्यौ तथा तत् सेवनम् ॥३१॥

अर्थः—हे श्री अगस्त जी (मुमुक्षू आत्माओं को) भगवत् प्राप्ति के लिए सबसे प्रथम यह विधि है कि आचार्य के स्वरूप को सम्यक् प्रकार समझ जाय और श्री सीताराम जी को माता-पिता जान ले ।

चौ०-"ईश्वर अंश जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी ॥"

और श्री गुरु महाराज जी का सम्यक् स्वरूप श्री सीताराम जी की कृपा डोरि है । इस डोरी का जन्म श्री सीताराम जी की कृपा दृष्टि है, अतः श्री सीताराम जी के कृपा ही माता-पिता होते हैं ।

आचार्य योनिमिह ये प्रविश्य, भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति, प्रहाय देहं परमं यान्ति योगम् ॥ ६ ॥
(महाभारत उद्योग पर्व अ० ४४ श्लोक ६, ८ देखें)

शरीरमेतौ कुरुतः पिता-माता च भारत ।
आचार्यशास्ता या जातिः पुण्या सा जरामरा ॥ ८ ॥

भगवान् एवं भगवान् के कृपा पात्रों का जन्म कर्म दिब्य होता है । जो तत्त्वतः इसको जानता है वह शरीर त्याग कर संसार में नहीं आता भगवान् को प्राप्त होता है । गीता०अ०४-९

जन्म कर्म च मेदिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैतिमामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥

"राममन्त्रोपदेशेन मायादूर मुपागता ॥ कृपागुरु देवस्त्र द्वितीय जन्म कथ्यते । पितागोत्रा यथा कन्या स्वामिगोत्रेण गोत्रिता । रामभक्ति मात्रेण अच्युत गोत्रेणगोत्रिता ।"

इस दिव्य ज्ञान का सुन्दर सरसफल है, श्री गुरु जी, सन्तों भगवतानुरागियों का दर्शन एवं सेवा की प्राप्ति है । (रा० ओ० २१०)

भारद्वाज-सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रहहीं ॥
सब साधन कर सुफल सुहावा । लखन राम सिय दरसनु पावा ॥
तेंहि फल कर फल दास तुम्हारा । सहित प्रयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम्ह जस जग जयऊ । कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ ॥

जिस जीव को भगवान् देख लें या जीव भगवान् को देख लें तो वह जोव परमपद के योग्य हो जाता है, परन्तु संसार रोग नाश तो भगवत् प्रेमियों के दर्शन से ही होता है ।

चौ०-जड़-चेतन मग जीव घनेरे । जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ॥
ते सब भये परम पद जोगू । भरत दरस भेटा भव रोगू ॥
(अयो० का० ११६)

और भी—

मोते अधिक गुरुहि जिय जानी । सकल भाव सेवहिं सन मानी ॥३१॥

मू०-तथारसस्वरूपं च विभावादि समन्वितम् ।
दिब्यनाम प्रकर्णं च तथादिव्य स्वरूपकम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—तथा भावादि समन्वितं रसस्वरूपं च दिब्यनाम प्रकरणं च तथा दिब्य स्वरूपकम् ॥३२॥

अर्थः—इस पूर्वोक्तानुसार भाव अनुभाव, विभावादि सहित रस के स्वरूप को और गुरु प्रदत्त दिव्य नाम प्रकरण सम्बन्ध को, और उसी प्रकार दिव्य स्वरूप को भी जानना है ॥३२॥

मू०-अष्टयामी तथा नित्या भावना भावसंयुता ।
स्वस्वसम्बन्ध विधिना शिक्षितब्या प्रयत्नतः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—तथा अष्टयामि भाव संयुक्ता नित्या भावना प्रयत्नतः स्वः स्वः सम्बन्ध विधिना शिक्षितब्या ॥३३॥

अर्थ—पूर्वोक्तानुसार अष्टयामिभावना संयुक्त नित्यभावना को बड़ी सावधानी के प्रयत्न से अपने-अपने सम्बन्ध के विधि अनुसार गुरु से सीखनी चाहिए ॥३३॥

मू०—ज्ञेय प्राप्यस्य रामस्य रूपं प्राप्तुस्तथैव च ।
प्राप्त्युपायं फलं चैव तथा प्राप्ति विरोधि च ॥ ३४ ॥

अन्वयः—ज्ञेयं प्रापस्य रामस्य रूपं च तथैव प्राप्तुस्स्वरूपं च प्राप्त्युपायं च फलं तथा च प्राप्ति विरोधि ज्ञातव्यम् ॥३४॥

अर्थः—ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, उपाय, फल यानीज्ञेय स्वरूप जानने योग्य प्राप्य परमात्मा श्रीराम जी का रूप है, और उसी प्रकार प्राप्ता जो आत्मा का स्वरूप है, यानि प्रापक जो आत्मा का स्वरूप है, वह भी जानने योग्य है, ज्ञाता (आत्मा का स्वरूप है) और उसी प्रकार प्राप्ति का उपाय ज्ञान (शरणागति धर्म) और प्राप्ति का फल भगवत् सेवा (इष्टमुस्कयान) स्वरूप जानने योग्य है, इसी प्रकार भगवत् प्राप्ति का विरोधि शरीर सम्बन्ध अभिमान तथा भौतिक विषयशक्ति है ॥३४ ॥

मू०—अर्थ पञ्चक मेतत्तु संक्षेपेण वदामिते ।

श्री हनुमानुवाच—

दिव्यानन्तगुणः श्रीमान् दिव्य मंगल विग्रहः ।
षड्गुणैश्वर्य सम्पन्नो मनोवाचामगोचरः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—षड्गुणैश्वर्य सम्पन्नः दिव्य मंगल बिग्रह मनोवाचामगोचरः दिव्यानन्तगुणः श्रीमान् रामचन्द्रः ॥३५॥

अर्थः—श्री हनुमान जी महाराज श्री अगस्त जी से कहते हैं, कि मैं अर्थ पञ्चक संक्षेप में कहता हूँ—

(क) षड्ऐश्वर्य १-भरणत्व, २-पोषणत्व, ३-आधारत्व, ४-शरणत्व, ५-सर्वव्यापकत्व, ६-कारुण्य ये ही षड्ऐश्वर्य हैं । इनके षड्ऐश्वर्य के अंश के अंश से त्रिलोक में षड्ऐश्वर्य दिखता है। हनु० वा० ४४—माया, जीव, काल के, करम के, सुभाय के, करैया 'राम' वेद कहे साँची मन गुनिये ।"

(ख) दिव्य मंगल विग्रह (शरीर) हैं-तुरीयावस्था रूप है । माया (प्रकृति) के अन्दर आप नहीं हैं आपके तेज से ही सम्पूर्ण प्रकृति जगत

प्रकाशित है। आप माया के स्वामी हैं। (रा० उ०-७२ दोहा)

प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनासी ॥

दोहा-राम सरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नित निगम कह ॥ (अयो०का१२६)

चौ०-चिदानन्द मय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी ॥
(रा०वा०-११६)

"विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता ॥
सबकर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई ॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीश ग्यान गुन धामू ॥
जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया ॥

मन, वाणी, से परे हैं, इन्द्रियों के विषय नहीं हैं, केवल अपनी निर्हेतुक कृपा से ही दर्शन देने वाले हैं। आपकी कृपा ही भक्ति है, अर्थात् जो अपकी कृपा डोरी का आश्रय लेकर आपकी आराधना करता है, वे आप में तथा आप उसके अन्दर रहते हैं बिना भक्ति के आप निरीह हैं, भक्ति से इच्छामय हैं- (रा०वा०१९८ दो०)

दोहाः— व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति वस, कौशल्या के गोद ॥
(अयो०का०२१९)

चौ०-तदपि करहिं सम विषय बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा।
(गी० अ० ९-२९)

समोऽहं सर्बभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्यामयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥

(ग) दिव्यानन्तगुण—आपके अनन्त दिव्य गुण हैं- सौशील्य, मार्दव, वात्सल्य, सौम्यत्व, धैर्य आदि दिव्य गुणों के आकार हैं। आप के ही गुणों के अंश के अंश से त्रैलोक में सभी गुणवान् प्रतीत होते हैं। आप अपने दिव्य गुणों से ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी गुण देकर गुणवान् बनाये हैं।

बिधिहि विधिता हरिहि हरिता शिवहिं शिवता जो दई।
सोई जानकीपति मधुरमूरति मोदमय मंगलमयी ॥
(विनय पत्रिका)

षड्ऐश्वर्य से युत दिव्य शरीर वाले मन वाणी से परे दिव्य अनन्त युक्त श्रीमान् रामचन्द्र जी हैं ॥ ३५ ॥

मू० -वेदवेद्यः सर्वसाक्षी सर्वोपास्यः स्वतन्त्रकः ।
नित्यानांनिज भक्तानां भोग्यभूतः श्रियः पतिः ॥ ३६ ॥

अर्थः—वेदों से जिनका लक्षण समझ में आता है, जो सबके ज्ञात-अज्ञात के साक्षी हैं (सबके उर अन्तर बसहुँ, जानहुँ भाव कुभाव) सभी ईश्वरों और जीवों के उपास्यदेव हैं । जो सबके स्वतन्त्र प्रेरक ईश्वर हैं, और अपने नित्य पार्षदों तथा प्रकृति के अन्दर अनन्यता से भजन करने वाले के भोग्यभूत हैं, अनन्त ऐश्वर्य की स्वामिनी, अनन्त ईश्वरियों की स्वामिनी श्री सीता जी के पति हैं ॥३६॥

मू०—ब्रह्मा विष्णु महेशानां कारणं सर्व व्यापकः ।
मूलं तुह्य वताराणां धर्म संस्थापकः पराः ॥ ३७ ॥

अर्थः—ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि ईश्वरों के कारण हैं, सर्वव्यापक हैं, अवतारों के मूल कारण हैं, धर्म के संस्थापक हैं, परात्पर ब्रह्म हैं ॥३७॥

सर्व व्यापक—आपके 'राम' नाम दो अक्षर के रहित होने से किसी अवतार का नाम यथार्थ अर्थ दाता नहीं होता है । आपके भक्तों का कथन है कि आपका नाम चारो युग में विद्या अविद्या (दैवी-आसुरी सम्पत्तियों) में तथा पाँचों तत्त्वों में आठ प्रकृतियों में आप का नाम व्याप्त है, अतः आपकी प्रसन्नता केलिये 'राम' नाम दो अक्षरों में चित्त लगाना चाहिए—

"नाम के अक्षर चौगुन कै पुनि, पाँच मिलाय के दूगुन कीजै ।
आठ को भाग दिये रघुनाथ को, नाम ही शेष तहाँ चित दीजै ॥"

अवतारों के मूल कारण—बृ०ब्र०सं०पा०२, अ० ६ श्लोक ९,१० ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूतले ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजत्य सौ ॥९॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय जातोऽहं राम संज्ञया ॥९॥

ये वाक्य श्री भगवान विष्णु जी, श्री लक्ष्मी जी से कह रहे हैं ।

मू०-द्विभुजश्चापभृच्चैव भक्ताभीष्ट प्रपूरकः ।
वैंदेहि वल्लभो नित्यं कैशोरेवयसि स्थितः ।।३८।।

अर्थः—दो भुजा वाले, धनुष वाण धारण किये हुए भक्तों के सभी प्रकार के मनोरथों को पूरा करने वाले नित्य किशोर अवस्था वाले श्री वैदेही वल्लभ हैं ।।३८।। इस स्थिति से और—

मू०-एवं भूतश्च ज्ञातव्यो रामोराजिवलोचनः ।
स्थूल सूक्ष्म कारण तो भिन्नं कोशाच्चपंचकात् ।।
जाग्रत्स्वप्नाद्यवस्थानां साक्षी भूतं तु सर्वदा ।। ३९ ।।

अन्वयः—च जाग्रत स्वप्नाद्यवस्थानां साक्षीभूतं च स्थूल सूक्ष्म कारणतः च षञ्चकात् कोशात् भिन्नं राजिवलोचनः रामः एवं भूत ज्ञातब्यः ।।३९।।

अर्थः—और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि प्रकृति के आवरण भूत अवस्थाओं के नित्य साक्षी भूत हैं और स्थूल (२४ तत्त्व वाला शरीर) सूक्ष्म (१७ तत्त्व वाला शरीर) कारण (दो तत्त्व वाला शरीर) प्रारब्ध, क्रियमाण, संचित कर्मों का आधार है, ये प्रकृति के आवरण हैं, इससे परे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय इन पाँच कोसों के आत्मा हैं । आत्मा के भी आत्मा परमात्मा कमल नयन श्री राम जी को इस प्रकार जानना चाहिए । यहाँ पर परमात्म स्वरूप पूर्ण रूप से कहा गया, आगे प्रापक आत्मा का स्वरूप कहते हैं ।।३९।।

मू०-चिदानन्दमयं नित्यं दिव्य विग्रह संयुतम् ।
अखण्डैकरसं चैव कैशोरेवयसिस्थितम् ।। ४० ।।

अन्वयः—चिदानन्दमय नित्यं दिव्यविग्रह संयुतं कैशोरेवयसिस्थितं च अखण्डैक रसं ।।४०।।

अर्थ—जो चिद् आनन्द नित्य दिव्य निग्रह संयुक्त किशोर अवस्था मे स्थिर और अखण्ड एक रस रहने वाले ।।४०।।

मू०-द्विभुजं सत्व सम्पन्नमीशसेवा प्रयोजनम् ।
प्रभोर्नियाम्यं शेषत्वं ज्ञातब्यं स्वस्वरूपकम् ।। ४१ ।।

अन्वयः—ईशसेवा प्रयोजनं सत्व सम्पन्नं द्विभुजं शेषत्वं प्रभोर्नियाम्यं स्वस्वरूपकं ज्ञातब्यम् ।।४१।।

❋ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ❋ श्रीमते रामानन्दाय नमः ❋

❋ श्री सर्वेश्वरी चारुशीलायै नमः ❋ श्री हनुमते नमः ❋

अथ श्री हनुमत्संहिता

श्री सीताराम रहस्य प्रकाशिका टीका

टीकाकार:—

रसराजैकनिष्ठ अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री अग्रदेवाचार्य वंशावतंस
श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द
मकरन्द रसलम्पट श्री श्री १०८ श्रीस्वामी जानकीशरण
जी महाराज (मधुकर) श्री चारुशीला मन्दिर,
श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी-२२४१२३
फोन नं०—३२७५४, (०५२७८)

* श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः * श्रीमते रामानन्दाय नमः *

* श्री सर्वेश्वरी चारुशीलायै नमः * श्री हनुमते नमः *

अथ श्री हनुमत्संहिता

श्री सीताराम रहस्य प्रकाशिका टीका

टीकाकारः—

श्रीसीताराम रहस्य समुद्रपोतायमान श्री रसराजाम्बुज दिनमणि आचार्य प्रवर अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री अग्रदेवाचार्य वंशावतंस श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द मकरन्द रसलम्पट श्री श्री १०८ श्रीस्वामी जानकीशरण जी महाराज (मधुकर) श्री चारुशीला मन्दिर,

श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी-२२४१२३

फोन नं०—३२७५४, (०५२७८)

सहयोगकर्ता-

डा० श्रीपुरुषोत्तम दूबे उर्फ श्री पुरुषोत्तम शरणजी

ग्राम-विष्णुपुरा, पो०-परमेश्वरपुर, जि० गोरखपुर, उ०प्र० (भारत)

संशोधकः—

श्रीअवधधाम वासी, दासानुदास- बासुदेव दास

श्री चारुशीला मन्दिर, श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी

(सम्वत २०५५, माघ शुक्ल ५, बसन्त पञ्चमी)

प्रथम संस्करण-१०००] सन् १९९८ ई० [मूल्यः- ३१) मात्र

✱ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ✱ श्रीमते रामानन्दाय नमः ✱

✱ श्री सर्वेश्वरी चारुशीलायै नमः ✱ श्री हनुमते नमः ✱

ध्यान मूलं गुरुर्मूर्ति, पूजामूलं गुरुपदम् ।
मन्त्र मूलं गुरुर्वाक्य, भक्तिमूलं गुरुकृपा ॥

"अथश्रीहनुमत्संहिता" के टीकाकारः—
रसराजैकनिष्ठ अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री अग्रदेवाचार्य वंशावतंस
श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द
मकरन्द रसलम्पट श्री श्री १०८ श्रीस्वामी जानकीशरण
जी महाराज (मधुकर) श्री चारुशीला मन्दिर,
श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी-२२४१२३

अर्थ—इष्ट सेवा को ही अपना प्रयोजन जानने वाला, सेवा में सर्व कर्त्तव्य सामर्थ्य सम्पन्न दो भुजा वाले इष्ट का अंशत्व; इष्ट देवता से प्रेरित अपने निजी स्वरूप को जानना चाहिए ॥४१॥

मू०-सर्वभूतदयाचैव सर्वत्र समदर्शनम् ।
अन्यत्रानिन्दनं चैव स्वेशेस्नेहाधिकं तथा ॥४२॥

अन्वयः—च स्वेशेस्नेहाधिकं सर्वभूतदया तथा सर्वत्र समदर्शनं च अन्यत्रानिन्दनम् ॥४२॥

अर्थः—उपरोक्त प्रकार से आत्मा के स्वरूप को कह कर के अब आत्मा के प्राप्त स्वरूप को कहते हैं कि अपने इष्ट देवता श्री सीताराम जी में स्नेह, प्रेम ममता, आशक्ति की अधिकता पूर्वक प्राणिमात्र पर दया करना, इसी प्रकार सबसे समदृष्टि रखते हुये और अन्य किसी की निन्दा न करें और ॥४२॥

मू०-गुरावीश्वर बुद्धिश्च तदाज्ञा परिपालनम् ।
स्वेशस्य तज्जनानां च सेवनं माययाविना ॥ ४३ ॥

अन्वयः—च गुरौः ईश्वर बुद्धिः तदाज्ञा परिपालनम् माययाविना स्वेशस्य च तज्जनानां सेवनम् ॥४३॥

अर्थः—श्री सद्गुरुदेव जू में ईश्वर बुद्धि रखना (क्योंकि इष्ट की कृपा-दृष्टि ही मूर्तिमान होकर गुरु रूप में मिलती है) और गुरु की आज्ञा सम्यक् प्रकार से पालन करना और छल, कपट, स्वार्थ, सकातमता माया को छोड़कर इष्ट देवता श्री सीताराम जी का और उनके भक्त जनों का हितमय सेवा करना ॥४३॥

"करे स्वामि हित सेवक सोई । दूषन कोटि देइ किन कोई ॥"

मू०-प्रभोः कृपावलंबित्वं भोक्तब्यं तत्सर्मार्पितम् ।
सच्छास्त्रेषु च विश्वासः प्राप्त्युपार्यमिहोच्यते ॥४४॥

अन्वयः—प्रभोः कृपावलंवित्वं तत्समर्पितं भोक्तब्यं च विश्वास सद्-शास्त्रेषु इह उपायं उच्यते ॥४४॥

अर्थः—भगवान की कृपा भगवान के मन्त्र रूप में गुरु परम्परा से आया हुआ । श्री सद्गुरु द्वारा प्राप्त कर गुरु मन्त्र के रूप में गुरु-निष्ठा ही भगवान के कृपा का अवलम्बनत्व है । जो मन्त्रार्थ के ज्ञान रूप में आत्मा का परमात्मा से

सम्बन्ध पैदा करता है। यही शरणागति है, जिसमें आत्मा को चढ़ने के लिये छः सीढ़ी हैं :—

१—अनुकूल का संकल्प करे।

२—प्रतिकूल का त्याग करना।

३—रक्षा करेंगे विश्वास करना।

४—रक्षक रूप में स्वीकार करना।

५—अपनी सम्पूर्ण जिम्मेदारी भगवान को दे देना।

६—भगवान की जिम्मेदारी के लिये रोवें।

अर्थात् भगवान् की सेवा के लिये उत्कंठा बनावे। ये छः सीढ़ियाँ भगवान् के घर जाने का रास्ता है। इससे भगवान् आत्मा को स्वीकार करते हैं, जो भगवत् धर्म के रूप में आत्मा से आचरण करने योग्य है। इस स्थिति में वैष्णव अपने प्रारब्ध के सम्पति भगवान को अर्पण कर के तब प्रसाद रूप में भक्तों को भोजन कराकर तब भोजन करे। भगवत् गुण परक सद्शास्त्रों में विश्वास करें। यह प्रारब्ध के अन्दर भक्त का भगवान् के प्राप्ति का उपाय कहा गया है ॥४४॥

मू०-प्रारब्ध परिभुज्याथभित्त्वा सूर्य्यादि मण्डलम्।
प्रकृतेर्मण्डलं त्यक्त्वा स्नात्वा तु विरजांभसा ॥४५॥

अन्वयः—अथ प्रारब्धं परिभुज्य सूर्य्यादि मण्डलं भित्त्वा (तथा) प्रकृतेर्मण्डलं त्यक्त्वा तु विरजां भसा स्नात्वा ॥४५॥

अर्थः—अर्थ पञ्चक के अन्दर उपाय स्वरूप कहने के बाद अब लोक धर्म का मोक्ष तथा भगवत्धर्म का मोक्ष भेद लिखते हैं। यहाँ पर लोक धर्मानुसार अर्चिरादि मार्गों का वर्णन है। (गी० अ० ८ के २४ से २६ तक देखें। और २७ में वर्णन है कि शुक्ल कृष्ण गति को जानता हुआ भी भगवत् शरणागत (सेवक-सेव्य भाव युक्त) शरणागत योगी मोह में नहीं पड़ कर शरणागति का भरोसा करता है तो गी० अ०—१२ श्लोक ६ के अनुसार शरणागति करने वाले को भगवान् शीघ्र स्वयं उद्धार करने वाले होते हैं (गी०अ० १२ के ७ श्लोकानुसार) जैसा कि मुमुक्षु आत्मा को प्रारब्ध भोगने के बाद (प्रारब्ध शरीर छूटने पर) प्रकृति के अन्दर देव मण्डल स्वरूप (दैवी प्रकृति) सूर्य्यादि मण्डलों को भेदन करके तब प्रकृति के सात

आवरणों का मण्डल त्याग करके उसके बाद विरजा नदी के जल में स्नान करके, पञ्च तत्त्वों के पाँच आवरण, अहंकार और महातत्त्व के दो आवरण ये ही ५+२ = ७ प्रकृति के आवरण हैं । इसके बाद असंख्य तीन गुणों के आवरण को पार करके तब विरजानदी में स्नान होता है ।।४५।। इसके बाद वह मुमुक्षु—

मू०-सवासनं देहद्वयं विसृज्य विरजोभवत् ।
अतिवेगेनतांतीर्त्वा प्राप्य साकेतकं तथा ।। ४६ ।।

अन्वयः—सवासनं देहद्वयं विसृज्यविरजोभवत् अतिवेगेन तां तीर्त्वा तथा साकेतकं प्राप्य ।।४६।।

अर्थः—संसारिक वासनाओं से सहित सूक्ष्म शरीर जो स्वप्नावस्था जो १७ तत्त्व का है, उसके सहित फिर, कारण शरीर सुषुप्ति अवस्था दो तत्त्व (आवरण और विक्षेप) को त्यागकर विरजा नदी में आत्मा कूद जाता है, तब अतिबेग से पार जाने पर फिर भगवत् पार्षदों द्वारा बड़े सन्मान के साथ ले जाया जाता है, तथा साकेत को प्राप्त कर लेता है ।।४६।। सनमान के आगे कहते हैं ।

मू०-प्रविश्य राजमार्गेण सप्तावरण संयुतम् ।
नानारत्नमयं दिव्यं श्री रामभवनं शुभम् ।। ४७ ।।

अन्वयः—नानारत्नमयं सप्तावरण संयुतं दिव्य शुभं श्री रामभवनं राजमार्गेण प्रविश्य ।।४७।।

अर्थ—उस श्री साकेत नगर के मध्य अनेक प्रकार के रत्नमय सात आवरण वाला दिव्य शुभ श्रीराम महल में राजमार्ग के द्वारा प्रवेश करके ।।४७।।

मू०-तत्र श्री भरतादिभिस्सेब्यमानं सदा प्रभुम् ।
विराजमानं बैदेह्या रत्नसिंहासने शुभे ।। ४८ ।।

अन्वयः—तत्र शुभे रत्नसिंहासने सदा भरतादिभिः सेब्यमानं बैदेह्या प्रभुं ।। ४८ ।।

अर्थः—श्री रामभवन के मध्य कल्याणमय रत्नमय सिंहासन में भरत जी से लेकर अनन्त पार्षदों से सदा सेवित बैदेही जी के प्रीतम को ।।४८।।

मू०-स्वभावनया श्रीरामं प्राप्य सर्व सुखप्रदम् ।
परानन्द मयोभूत्वाऽवस्थानं फल मुच्यते ।। ४९ ।।

अन्वयः—सर्वंसुखप्रदं स्वाभावनया श्रीरामं प्राप्य परानन्दमयः भूत्वा अवस्थानम् फल मुच्यते ।।४९।।

अर्थः—जो सभी प्रकार के सुख देने वाले हैं, उन श्रीराम जी को अपनी भावना के अनुसार प्राप्त करके महाआनन्दमय होकर ठहरना, यह प्राप्ति का फल कहा जाता है ।।४९।।

मू०—अनात्मन्यात्म बुद्धिस्तुस्वात्म शेषत्वभावना ।
भगवत्दासवैमुख्यं तदाज्ञोल्लंघनं तथा ।। ५० ।।

अर्थः —अब विरोधि स्वरूप बताते हैं, नाशवान शरीर में आत्मबुद्धि और उस शरीर से पैदा हुए पुत्रादिकों में शेषत्व बुद्धि (अर्थात् सम्बन्ध बुद्धि) भगवत् भक्तों को पराया जानना, तथा देखना, विपरीत आचरण करना, सन्तों की आज्ञा का उलंघन करना ।। ५० ।। और

पञ्च तत्वों का शरीर आत्मा नहीं है, क्योंकि पञ्चतत्त्व भोजन नहीं करता है, पञ्चतत्त्वों के द्वारा आत्मा को भूख, पियासा, सुख-दुख, होता है । इसलिए पञ्च तत्त्वों का शरीर आत्मा नहीं है । अपने कर्मों का फल देवताओं द्वारा दिया हुआ भोगने वाला ईश्वर अंश चैतन्य शक्ति है । परन्तु पञ्च तत्त्वों को सब जानते हैं, उस आत्मा को सब नहीं जानते हैं, भगवान् की कृपा मूर्ति श्री गुरु महाराज के द्वारा आत्मा अपने सहज स्वरूप को जान सकता है, उस अवस्था में शरीर को अपना स्वरूप न मानकर परमात्मा के लिए सुख-दुःख आदि का सहन करता है । जिस तरह से अविवेकि (संसारी भक्त) अपने शरीर की सेवा करते हैं, उसी प्रकार भगवत् शरणागत गुरु द्वारा प्राप्त विवेक युक्त विवेकि भगवान् की सेवा करता है ।

"सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं । जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं ।।"

तो रघुनाथ जी भी आँख के गोलक की जैसे पलक सेवा करती हैं ।

"जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे । पलक विलोचन गोलक जैसे ।।
तुम पर अस सनेह रघुबर के । सुख जीवन जग जस जड़ नर के ।।"

मू०—ब्रह्मशेन्द्रादि देवानामर्चनं वन्दनादिकम् ।
असच्छास्त्राभिलाषश्च सच्छास्त्रस्यावमाननम् ।। ५१ ।।

अर्थः—ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र आदि देवताओं में भौतिक सकामताओं से पूजा वन्दनादि कर्त्तव्य तथा असच्छास्त्रों की पढ़ने की चाहना और सच्छास्त्रों का अपमान करना ॥ ५१ ॥

मू०-मर्त्यसामान्य भावेन गुर्वादौनाति गौरवम् ।
स्वातंत्र्यं चाप्यहंकारो ममकारस्तथैव च ॥ ५२ ॥

अन्वयः—मर्त्यसामान्य भावेन गुर्वादौ अतिगौरवं न तथा अहंकारः च ममकारः च स्वातन्त्र्यं ॥५२॥

अर्थः—जनमने-मरने वाला साधारण मनुष्य की तरह से गुरू जी आदि भगवत् शरणागतों में उपकार दृष्टि से भगवान् से बढ़कर अतिगौरव न होना और अहंकार तथा ममकार अपना करके अपने को स्वतन्त्र मान लेना ॥५२॥

मू०-द्वादशी विमुखत्वं च ह्यकृत्यकरणं तथा ।
ज्ञेयं विरोधिरूपं तु स्वस्वरूपस्य सर्वदा ॥ ५३ ॥

अन्वयः—तथा द्वादशी विमुखत्वं च ह्यकृत्यकरणं सर्वदा स्वस्वरूपः तु विरोधिरूपं ज्ञेयं ॥५३॥

अर्थः—द्वादशी के व्रत से विमुख होना और बुद्धि के निश्चय पूर्वक न करने योग्य कार्यों को करना, इसे हमेशा स्वस्वरूप (सहज स्वरूप) का विरोधि रूप को समझना चाहिए ॥५३॥

मू०-एवं तत्व परिज्ञानादाचार्यानुग्रहेणहि ।
तत्क्षणे जानकीनाथे प्रीतिर्नित्याभिजायते ॥ ५४ ॥

अन्वयः—एवं आचार्यानुग्रहेणहि तत्त्व परिज्ञानात् तत्क्षणे जानकीनाथ नित्या प्रीतिः अभिजायते ॥५४॥

अर्थः—इस प्रकार सद्गुरु के कृपा अनुग्रह से ही तत्त्व का सम्यक् प्रकार ज्ञान प्राप्त कर लेने से उसी क्षण में श्री जानकी नाथ जी में नित्य जो अनुराग है वह पैदा हो जाती है ॥५४॥

मू०-उपादिशेच्च सम्बन्धं परीक्ष्य विधिवज्जनम् ।
वैपरीतांचनो कार्यं कदाचिद्भाव ज्ञातृभिः ॥ ५५ ॥

अन्वयः—विधिवज्जनं परीक्षा च सम्बन्धं उपादिशेत् च भावज्ञातृभिः कदाचिद् वैपरीत्यं न कार्यं ॥५५॥

अर्थः—इस प्रकार विधिपूर्वक आश्रित जनों को अच्छी तरह से परीक्षा करके तब सम्बन्ध का उपदेश करें, भाव का मर्मज्ञ विद्वान के साथ कभी भी इसके बिपरीत कार्य न करें ॥५५॥

मू०-अस्याधिकरिणोलोके केपि केपि महामुने ।
अतः सर्व प्रयत्नेन गोपनीयं सदैवहि ॥ ५६ ॥

अन्वयः—हे महामुनेः लोके अस्य अधिकारिणः केपिकेपि (सन्ति) अतः सर्व प्रयत्नेन स सदैवहि गोपनीयं ॥५६॥

अर्थः—श्री हनुमान जी कहते हैं कि हे महामुनि श्री अगस्त जी इस संसार में इस रहस्य के अधिकारी कोई-कोई होते हैं । इसलिए सभी प्रकार के प्रयत्नों से नित्य ही इस बात को छिपाकर रखना चाहिए ॥५६॥

मू०-यइदं धारयेद्भावं संबंधाख्यमनुत्तमम् ।
धन्य धन्यतमो लोके स एवैको विनिर्मितः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—यः इदं अनुत्तमं सम्बन्धाख्यं भावं धारयेत् स लोके एको एक धन्य धन्यतमो विनिर्मितः ॥५७॥

अर्थः—जो भगवत्भक्त महाकृपात्र इस सर्वोत्तम सम्बन्ध नामक भाव को धारण करता या करेगा, वह लोक में एक ही धन्य-धन्यतम भगवान द्वारा निर्मित हुआ है ॥५७॥

मू०-श्रुत्वा हनुमतोवाक्यं परमानन्द दायकम् ।
प्रशस्य बहुधातं वै प्रणभ्य च पुनः पुनः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—परमानन्द दायकं हनुमतो वाक्यं श्रुत्वा तं वै बहुधा प्रशस्य च पुनः पुनः प्रणभ्यं ॥५८॥

अर्थः—अब श्री अगस्त जी महाराज श्री हनुमान जी की स्तुति करते हैं। परम आनन्द को देने वाले श्री हनुमान जी के बचन को सुनकर के श्री हनुमानजी को बहुत प्रकार से प्रसंशा किये, और बार-बार प्रणाम किये ॥५८॥

मू०-तदाज्ञामधिगम्याथ कृतार्थश्छिन्न संशयः ।
जगाम स्वाश्रमं विप्रो मुनिवर्य गणावृतम् ॥५९॥

अन्वयः—अथ विप्रः तदाछिन्न संशयः कृतार्थः आज्ञां अधिगम्य मुनी-वर्यगणावृतं स्वाश्रमं जगाम ॥५९॥

अर्थः—इसके बाद वे ब्राह्मण देवता श्री अगस्त जी निःसंशय होकर कृतार्थ हो गये, तथा श्री हनुमान जी की आज्ञा पाकर मुनि श्रेष्ठ अगस्त जी मुनियों के समाज से घिरे हुये अपने निजी आश्रम को चले गये ॥५९॥

इति श्री हनुमत्संहितायां परम रहस्ये हनुमदगस्त्य सम्वादे
सर्वं सारांशसारे श्रीसीताराम सम्बन्धोनाम षष्टोध्यायः
श्रीमज्जनकनन्दिनी रघुनन्दनार्पणमस्तु ॥६॥

श्रीं सीताराम रहस्य समुद्रपोतायमान् श्री रसराजाम्वुज दिन मणि आचार्य प्रवर अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्रीअग्रदेवाचार्यं वंशावतंस श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणार्विन्द मकरन्द रस-लम्पट श्रीजानकी शरण जी महाराज (मधुकर) द्वारा श्री-'हनुमत्संहिता' श्री सीताराम रहस्य प्रकाशिका टीका षष्टमोऽध्याय सम्पूर्णः ॥ ६ ॥

ऋग्वेद १०-६४-७

प्रवो वायुं रथ युजं पुरन्धि स्तोमैः,
कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि,
क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ॥

रहस्य मार्तण्ड भाष्यम्—अथ रामः स्ववक्तव्यमाह-प्रेति । वो युष्माकं बानराणां पुरंधिपुरोअग्रेधीयते इति तमग्रेसरं सर्वंममपार्षद समूहमध्ये प्रधानम्। रथयुजं शरीरधारिणं वायुं वायुदेवं वानररूपं वायुदेवांशम् ममप्राण प्रियकरं हनुमन्तं इत्यर्थः। (अथवा मम प्राण प्रिया सीता तस्याः प्रधान अंशभूता प्रधान-सुखी श्रीचारुशीला सा एव अयं बानररूपः तं) सख्याय मैत्री प्रयुक्त कार्याय।

सुग्रीवेण मैत्री स्वीकृत्य यत्सीतान्वेषणादिकं कार्यमङ्गीकृतं तदर्थं मित्यर्थः । प्रस्तोमैः प्रकृष्टैः स्तवै बल गुण रूपादि वर्णन रूपैः पूषणं पुष्टिकार्यं साधनोत्साहं कृणुध्वं सम्पादयत् । मदीय कार्यार्थं । इमं स्तुतिभि रुत्साहयतेत्यर्थः । तत्समर्थनायाह–हि यस्मात् ते प्रस्तावा देवस्य परमेश्वरस्य सवितुः सर्वं जगत् कारणस्य सवीमनि सन्तान भूतेऽस्मिंल्लोके सचेतसः सहृदयस्य महामनसः सचेतनस्य पुरुषस्य क्रतुं क्रियां संकल्पं च सचन्ते पुरुषार्थसिद्धि प्रति गमयन्ति । स्तुतिभिर्हि महतां शक्तिस्तथा जागर्ति यथा ते पुरुषार्थमवश्यं साधयन्तीत्यर्थः। अतएव मत्कार्य सिद्धयथमयं महामना हनुमान वश्यं स्तोतव्य इतिभावः ।

-: दीपिका टीका :-

उक्त रीति से वानरों को सम्बोधित कर श्रीरामजी कहते हैं कि आप लोगों के अग्रेसर मेरे भक्तजनों में प्रधान भूत ये श्रीहनुमान्जी वायु देवाँश मेरे प्राणप्रिय कार्यकर्ता हैं । सुग्रीव द्वारा स्वीकृत मेरे सीतान्वेषणादि कार्य केलिये आप लोग उत्कृष्ट स्तुतियों से उत्साहित करें। क्योंकि स्तुति वाक्य सर्व जगत् कारण परमात्मा के सन्तान रूप इस लोक में महामना पुरुषों को पुरुषार्थ सिद्धि में प्रेरक होते हैं । पुरुषार्थ की सिद्धि तक पहुँचने की प्रेरणा देते हैं । इस मन्त्र से श्रीरामजी द्वारा श्रीहनुमान्जी को सर्व पार्षद शिरोमणि पद प्रदाता दिखाया है । यह वेद द्वारा श्री हनुमान जी का सर्व पार्षद शिरोमणित्व प्रत्यक्ष है ।

ऐसे ही श्री नीलकण्ठ जी लिखते हैं—

भो देवाः वः युष्माकं मध्ये वायुं वायुपुत्रं रथयुजं देहधरं पुरः धीयत इति पुरःसरं स्तोमैः स्तुत्या कृणुध्वं सख्याय सखि वत कर्याय पूषणं पोषणं मत्कार्यार्थं इमं स्तुवध्वमित्यर्थः ॥ हि यतः ते स्तोमा सः सवितुं देवस्य सवीमनि प्रसवे लोके क्रतुं संकल्पं सचन्ते संपादयन्ति । सचितः चेतनस्य पुंसः सचेतसः सहृदयस्य स्तुत्यः सहृदयं कार्ये प्रवर्तयन्तीत्यर्थः ॥

इस ब्याख्या में भी श्री हनुमान जी का पार्षद प्रमुखत्व ही अर्थ श्रीनीलकण्ठजी ने व्याख्या की है स्वयं श्रीरामजी ने अपने पार्षदों द्वारा श्रीहनुमान्जी की प्रमुखता दिलाया है, अतः अन्य सर्वेश्वरी नहीं हो सकती हैं ।

✻ श्री हनुमते नमः ✻

卐 श्री हनुमान--चालीसा 卐

दोहा— जय जय जय सियराम रसिक, महावीर हनुमान ।
अंजनि नन्दन पवनसुत, दया करुणा कि खान ॥ १ ॥

जय जय जय हनुमान कृपाला । सिय पिय कृपादृष्टि प्रतिपाला ॥
कृपादृष्टि मूरति तनु धारी । प्रणत जनन्ह के भव भय हारी ॥
ऐश्वर्य देश मह परम विरागी । युगल माधुर्य महा अनुरागी ॥
विनु तव कृपा न अवध प्रवेशा । यत्न कोटि कोउ करे हमेसा ॥
सनकादि ब्रह्मादि मुनीसा । ब्रह्म तत्त्व मग्न अहरनीसा ॥
सो सब गुरु हनुमन्तहिं मानी । सिय राम तत्त्वहिं कुछ जानी ॥
लहि तव कृपा स्वरूप सम्हारा । सिय पिय सेवा चित्तहि धारा ॥
छन छन लखि सियपिय हियझाकी । जग से सदा रहे मन माखी ॥
जीवन मुक्त अव्याहतगति पाई । तीन लोक सिय पिय गुन गाई ॥
ऐसे हनुमत को चित्त ध्यावै । सो नर जीवन मुक्त हो जावै ॥
जेहि जन पर हो कृपा तुम्हारी । कृपा डोरि में सो बन्धारी ॥
जेहि छण राम सम्बन्ध दृढाई । अनेक जन्म कै बिगरी बनाई ॥
शरीराभिमान लंकहि जराई । सिय अंशहि स्वरूप जनाई ॥
तेहि को वैभव से भय लागे । तव सिय चरण प्रेमहिं जागे ॥
जागत सोवत सिय गुन गावै । मन, बुद्धि, चित्त रामहि चढ़ावै ॥
दोउके कृपा समुझि मनमाहीं । युगल चरण पद सदा सोहाहीं ॥
परम लक्ष्य मानव जीवन को । सहजहि भक्ति होय सिय पिय को ॥
मोहि अधम अलायक जानी । करहु कृपा सेवक जन जानी ॥
सिय पिय केलि हृदय विहारा । मन नयनन्ह ते निरखौ उदारा ॥
तीन रूप सेवा हितु धारी । चारुशीला प्रसाद सुखकारी ॥
चन्द्रकान्ति अरु शत्रुजित नन्दिनी । उभय पक्ष सदा अनिन्दिनी ॥
सकल वैभवादि परे सियरामा । शुद्ध सच्चिदानन्द सुख धामा ॥

सच्चिदानन्द लीला अनुरागी । सकल वैभव से परम विरागी ।।
आतमस्वरूप सिय चरणहि लागी । अंश अंशहि जीव रूप सो मानी ।।
राम कार्य वानर तन धारी । दास भाव परम सुखकारी ।।
सिय पिय रूप हृदय में धारी । सकल कार्य सदैव सम्हारी ।।
अमित बुद्धि वल तेज अपारे । केशरी अंजनि नयन सितारे ।।
लाँघि समुद्र लंकहि जराई । जनक सुता के सुधि लाई ।।
बल पौरूष के नही अभिमाना । राम कृपा के है अभिमाना ।।
यह अभिमान भूल न जावै । ताते सिय पिय नित्यहि ध्यावै ।।
निगमागम प्राण सम राखे । नित्य सगुन सिय रामहि भाखे ।।
चार अवस्था तीन कालहि भाई । हनुमत कृपा विनु जान न पाई ।।
हनुमत कृपा पूरण हो जाई । सिय पिय केलि हृदय अनुभाई ।।
जन्म कर्म सब दिब्यहि पाई । दिब्य स्वरूप लखहि सुखदाई ।।
ताके दर्शन जो जन करहीं । जीवन मुक्त सदा सुख लहहीं ।।
ऐसे परम उदार हनुमाना । सकल मान रहित सुख धामा ।।
परम दयालु कृपाल हनुमन्ता । कारण केहि बिसारो सुखवन्ता ।।
शरण शरण अव शरण पुकारों । गुन अवगुन सब देहु बिसारों ।।
“बासुदेव” करें कर जोरी । हनुमत सुनहु यह बिनती मोरी ।।
भौतिक वासना बिष सम लागे । होय कृपा सिय पद अनुरागे ।।
बमन सम त्यागौं संसारा । सिय पिय रूप सदा हिय धारा ।।
केवल कृपा अवलम्ब तुम्हारा । साधन जप तप योग बिसारा ।।

दोहा— हृदयाकाश भक्ति भू, सिय पिय केलि विहार ।
आदि गुरु हनुमत कृपा, सरस सुखद हिय हार ।। १ ।।

हनुमत कृपा हिय धारिके, चालीसा करे पाठ ।
ताके हृदय में सुझे, सेवा ललित सुठाम ।। २ ।।
“बासुदेव” के चाह यहि, और चाह जरि जाय ।
गुरु कृपा सिया रामचरण, दृढ़ निष्ठा हो जाय ।। ३ ।।

श्री सद्गुरवे नमः

श्री सद्गुरू चालीसा

दो०- तत् पद वाच्य रामसिय, प्रेरणा ओमहि जान।
सत् पद वाच्य आत्मा, गुरु निष्ठा से मान ॥ १॥
कृपा दृष्टि सियराम के, गुरु बनि आयो लोक।
ताके चरण शरण बिनु, आत्मा न हो विशोक ॥ २॥

चौपाई—

बन्दौं गुरु पद कमल सुखदाई। जे ही ब्रह्मा विष्णु भी ध्याई ॥
गुरु पद महिमा अकथ अतीवा। कहि न सकइ सारद अरु शीवा ॥
ते सज्जन अतिहि बड़ भागी। जाके मन गुरु पद अनुरागी ॥
अतिहि अँधियार हिय आकाशा। गुरु बाणी सूर्यहि प्रकाशा ॥
प्राकृत सूर्य दोष से युक्ता। दिब्य सकल दोषों से रहिता ॥
कदापि जाके हिय बस जाई। गुप्त प्रगट सब देखहिं भाई ॥
गुरु पद सेवक देखहिं कैसे। निज सम्पत्ति संसारि जैसे ॥
आत्मा धन धनी भगवाना। गुरु कृपा ते सहजहिं जाना ॥
संधिनि होय सम्बन्ध कराई। होय संदीपनि प्रकाश जनाई ॥
गुरु शरण बिनु नाम जो जपहि। सो भी महिमा वेद न कथहि ॥
सहज भाव गुरु शरणहि जाई। प्रेम सनेह के बीजहि पाई ॥
निःस्रोत सनेह हृदयमय होई। सियराम रीझहिं सुख होई ॥
ताके भेद वेद नहि जानहिं। जैसे क्षेत्र क्षेत्रज्ञ न जानहि ॥
जय गुरुदेव दयाल कृपाला। सत्य संध दीनन्ह प्रतिपाला ॥
होय दीन शरणहि जो आवे। सियराम पद प्रेम बढ़ावे ॥
सियराम के कृपा स्वरूपा। मानव देह धरे अनूपा ॥
नाद सृष्टि के परम प्रकाशी। बिन्दू सृष्टि से सदा उदासी ॥
सियराम पद सरस अनुरागी। जागत सोवत सीयगुन भाखी ॥
शरीर आशक्ति लंकहिं बताई। षड्बिकार राक्षस समुदाई ॥
युगल मन्त्र संजीवन मूरी। करि सुकृपा हृदय भरि पूरी ॥

अथ पञ्चक के दिव्य स्वरूपा । विनु तव कृपा न पाव अनूपा ।।
सियराम भक्ति सुदृढ़हि होई । ताते आवा गमन न होई ।।
पाय कृपा स्वरूप सम्भारी । भाव भावना होय उजारी ।।
जन्म कर्म सब दिब्यहि जानी । सकल भाव सेवहिं सुख मानी ।।
भाव प्रदेश हृदय के माहीं । अष्टयाम सेवा सुख पाहीं ।।
जय गुरुदेव सरस सुखवन्ता । सिय पिय केलि सदा मनवन्ता ।।
स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरा । मायामय दुःख के जन्जीरा ।।
तव कृपा ते सहज नशाई । विरुज शरीर पावे सुखदाई ।।
सहज स्वरूप तुरीयहिं जानी । अहरनिशी सेवे सुखमानी ।।
दम्पति मधुर मनोहर जोरी । लखी रति-पति सब भये विभोरी
ऐसहि छबि बसे मन माही । 'रूपशीला' सुख और न चाही ।।
कारण रहित गुरुदेव कृपाला । सियराम रूप के परम रसाला ।।
हर्षि हर्षि सियवर गुन गावत । अनन्यता के भाव दरसावत ।।
सिय पिय नाम रटत रटावत । श्रावण भादों मेघ बरसावत ।।
सिय गुन गावत अति सुखमानहिं । भौतिक सुख तृण सम जानहिं ।।
धाम निष्ट परम सुखकारी । करत करावत अति दुख हारी ।।
मोहि केवल गुरु की आसा । और सभी से रहो निरासा ।।
अनाथ जानि कृपा सुकीजै । नाम रूप लीला मन भीजै ।।
षट् विकार अतिसय बलवाना । ताते चित्त सुथिर न जाना ।।
"वासुदेव" कहत कर जोरी । विनती सुनिय गुरुदेव मोरी ।।

दो०- सौन्दर्य गुण सियराम के, सौन्दर्य शीला जू नाम ।
ताके कृपा प्रसाद लहि, जोव लहत विश्राम ।। १ ।।
ऐसी कृपा सुकीजिये, सीयराम रहस्य प्रवीन ।
युगल रस समुद्र में, मन मिन रहे लयलीन ।। २ ।।
युगल मन्त्र गुरु से लिये, किये नहीं सत्संग ।
राम रूप चीन्हें नहीं, कैसे लागे रंग ।। ३ ।।

श्रीराम सदाशिव संहितायां श्रीराम

श्रीराम मन्त्रस्यांशानि मन्त्राण्यन्यानि विद्धिच ।
हनुमता चार्येणाहो रामधाम सतां पदम् ॥१॥
श्रीजानक्याः पति सर्वे भजध्वं मङ्गलायनम् ।
राम मन्त्रेणायुधाभ्यां युक्ताः शुशुभिरे भुवि ॥२॥
सुर गुर्वादि गुरवो राम मन्त्रस्य सेवकाः ।
श्रीगुरो र्मारुतेः शिष्यो सुग्रीवश्च कपीश्वरः ॥३॥
श्रीरामस्या युधौ तप्तौ राम मन्त्रं व्यधारयत् ।
पञ्चाष्टादश संख्याता स्व सेन्याश्च हनुमतः ॥४॥
दीक्षिता स्तेन मन्त्रेण धनुर्वाणेन चांकिताः ।
हनुमच्छिष्यतां प्राप्तो महाराजो विभीषणः ॥५॥
रामायुधाभ्यां तप्ताभ्यां मंकितश्च स मुद्रया ।
तथा तस्य प्रजाः सर्वा चिन्हिता राम लाञ्छनैः ॥६॥
राजमार्ग मिमं विद्धि रामोक्तं जानकी कृतम् ।
यदृते चान्य मार्गास्तु चौराणां वीथिका यथा ॥७॥
आद्याचार्य हनुमन्तं त्यक्त्वा ह्यन्य मुपासते ।
क्लिश्यन्ति चैव ते मुग्धः मूलहा पल्लवाश्रिताः ॥८॥
श्री मैथिल्याश्च मन्त्रं हि श्री गुरु मारुतं महत् ।
सखो भावं दम्पतीष्ठं भुक्ति मुक्ति प्रदं सदा ॥९॥
श्रीजानकी सम्प्रदायं राम रास मनन्यताम् ।
ऋते केपि न यास्यन्ति वाञ्छित फल मेव च ॥१०॥
श्रीरामस्या युधौ तप्तौ जानकी मुद्रिकां विना ।
पारमेष्ठ्यं न प्राप्नोति ज्ञानादि साधनैरपि ॥११॥

मुद्रकः—सन्त तुलसीदास प्रिंटिंग प्रेस, अयोध्या ।